सिद्धयोग

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

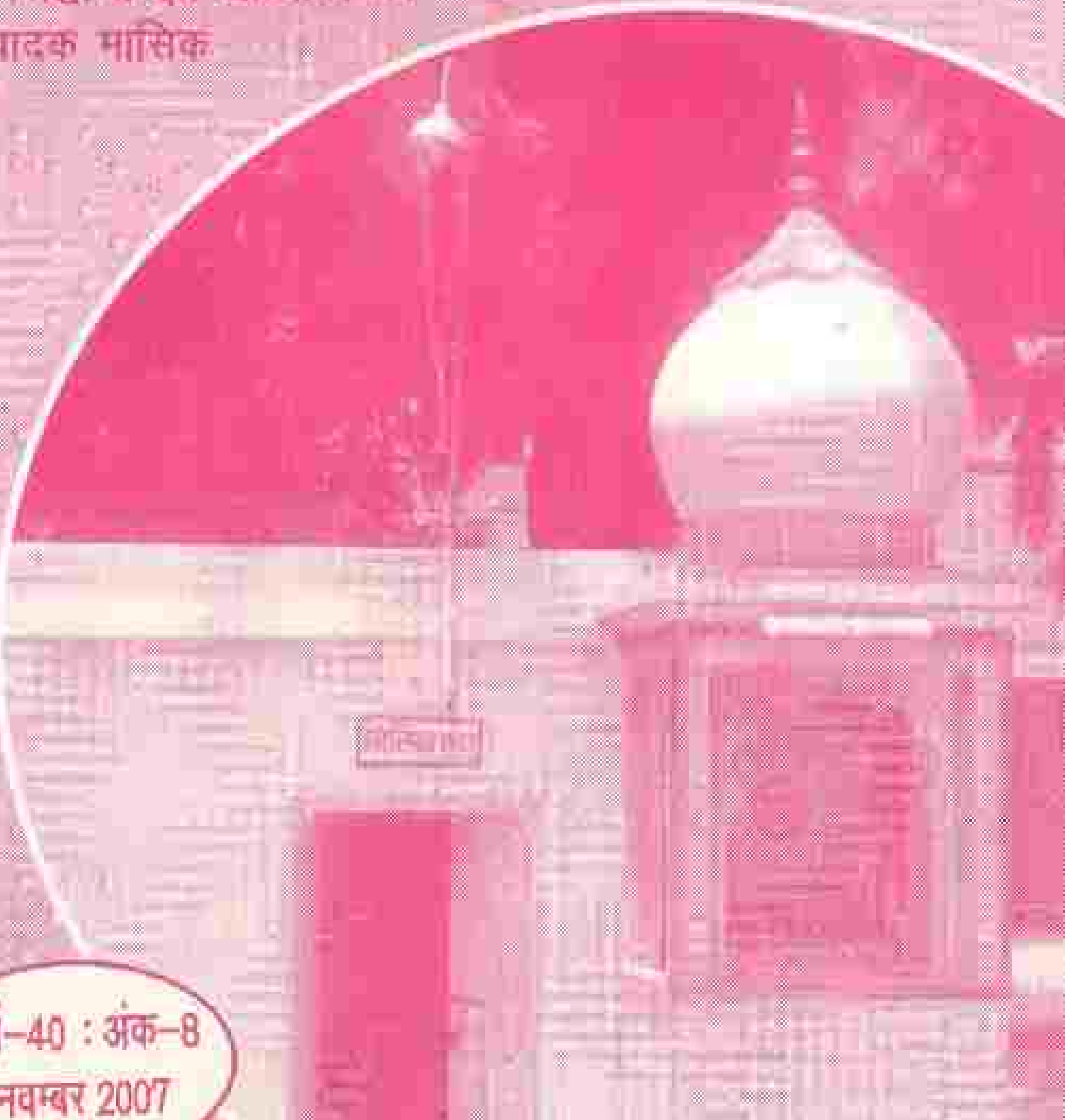

वर्ष–40 : अंक–8
नवम्बर 2007

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहार कर्मसु।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च।।

(चाणक्यसूत्र)

धन-सम्पदा, सांसारिक जीवन, भोग विलास और विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों के सेवन के मामले में सभी प्राणी अतृप्त रहकर ही चले गये, जायेंगे और जाते रहेंगे।

◆ ◆ ◆

व्यसनेवार्थ कृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वयाबुद्धया धृति मान्नावसीदति।।

(रामायण किष्किन्धा काण्ड)

अर्थात् विवेकवान व्यक्ति, स्वजन का वियोग होने पर, धन का नाश होने पर, भय सामने आने पर और प्राणों पर संकट होने पर भी अपनी बुद्धि से काम लेते हैं, अतः कभी दुःखी नहीं होते।

◆ ◆ ◆

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञानं भारः क्रिया विना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रियाँ नहीं हैं उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है। जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

◆ ◆ ◆

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

अर्थात् भोग को हम नहीं भोगते, भोग हमें ही भोग लेते हैं। तप नहीं तपा जाता है, हम स्वयं तप जाते हैं। काल का अन्त नहीं होता, हम काल में समा जाते हैं। तृष्णायें जीर्ण नहीं होतीं, हम स्वयं जीर्ण हो जाते हैं। भोग भोगने से तृप्ति कदापि नहीं होती अपितु तृष्णायें बलवती होती जाती हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 40
अंक : 8

नवम्बर
2007

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यौमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं
ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा
आशा मम मित्रं भवन्तु।।

(अथर्ववेद 19/15/6)

अर्थात्

हे प्रभो ! हमें मित्र से भय न हो, शत्रु से भय न हो, परिचित व्यक्तियों एवं सभी वस्तुओं से निर्भयता प्राप्त हो। परोक्ष में भी हमें कभी कुछ भय न हो। दिन में, रात में और सभी समय हम निर्भय रहें। किसी भी देश में हमारे लिए कोई भय का कारण न रहे। सर्वत्र हमारे मित्र ही मित्र हों।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2. सम्पादकीय	10
3. निरतिशय सुख की प्राप्ति और आत्मसाक्षात्कार – आचार्य रामप्रताप शास्त्री	13
4. अष्टांग योग साधना – डॉ. ऋषिराम शर्मा	15
5. प्राणायाम विधि – डॉ. राजकुमारी त्रिखा	20
6. श्री प्रभु चरणों में समर्पित (कविता) – श्री राजेश कुमार सिंह	23
7. परमपुण्य हों अपने तब ही (कविता) – श्री द्वारका प्रसाद शर्मा	24
8. समय, शक्ति एवं साधन – श्री अगरचन्द नाहटा	26
9. वर्तमान में रहो – श्री दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर	29
10. तत्क्षण उसको फल देते (कविता) – श्री वेदव्रत द्विवेदी	31
11. वेदों में ईश्वर भक्ति – श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह	32
12. सत्य ही जीवन है – सुश्री निर्मला चन्देल	33
13. गोरखपुर में योग सम्मेलन	34
14. माया जाल : मकड़जाल – श्री दिनेश शर्मा	35
15. जीवन का प्रथम आधार : आहार – शशिनाथ झा	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 120.00
द्विवार्षिक	: रु. 210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

• विशेष लेख

सिद्धों का शक्तिपात एवं योगदीक्षा

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सारा संसार शक्ति के आधार पर चलता है। मनुष्य के मान, सम्मान, यश और वैभव का आधार शक्ति है। जहाँ पर मनुष्य को शक्ति दिखलाई देती है वह उसका सेवक बन जाता है। संसार में जितनी उपासनायें प्रचलित हैं ये नाम रूप के छद्म से शक्ति की उपासना है। हम भगवान राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, सदाशिव, महामाया, भगवती दुर्गा आदि देवताओं की उपासना में लगे रहते हैं किन्तु आप लोगों ने कभी यह विचार कर नहीं देखा होगा कि हमारे हृदयों के अन्दर इनकी उपासना का मूल कारण क्या है? ऊपर की आकृति देखने से भगवान श्रीराम मानवाकृति है। श्रीकृष्ण, श्रीशिव, श्रीगणेशजी, भगवती दुर्गाजी–ये सभी मनुष्य आकृति में छिपे हुए तेज हैं किन्तु इन सभी में आत्म तेज को दर्शाने वाली केवलमात्र वह शक्ति है जिसका चमत्कार देखकर मनुष्य ने जान लिया कि मानवाकृति में छिपे हुए ये किसी महान शक्ति के अधिष्ठान हैं। श्री राम का समुद्र पर सेतु–बन्धन करना, राक्षसों को युद्ध में पराजित करना, ऋषियों की रक्षा करना, ये सब किसी भीतरी शक्ति के परिचायक हैं जिससे मनुष्य की मानवाकृति में छिपे हुए परम तेज का दिग्दर्शन होता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलायें, अघासुर–बकासुर का वध करना, कालीयमर्दन, गोवर्धन धारण आदि लीलायें उनकी महान शक्ति की परिचायिका है। यही उदाहरण भगवान शिव, भगवती दुर्गा व अन्य सभी पीर, पैगम्बरों पर लागू होता है। जहाँ अथवा जिसमें शक्ति बाहुल्य दिखायी देता है वही मनुष्य का आराध्य देव और इष्टदेव है। मनुष्य शक्ति से खाली है। इसलिये **"मनुष्यो देवानाम् पशुः"** मनुष्य देवताओं का पशु रहता है और उनका आराधक रहता है क्योंकि वे विशेष शक्ति के अधिष्ठान है। मनुष्य जिस समय जन्म को धारण करता है तब वह शक्ति के बहुत बड़े कोष को धारण करता है। किन्तु ज्यों–ज्यों संसार के प्रपंचों में फँसता जाता है त्यों–त्यों उसकी शक्ति का ह्रास होता है और अन्ततः समय आने पर वह काल के गाल में चला जाता है। भर्तृहरि ने निम्न श्लोक में मनुष्य की आयु का विभाग बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है, वे लिखते हैं–

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ, तदर्धं तस्यार्द्धस्यपरस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः शेष व्याधि वियोग दुःख सहित सेवादिभिर्नीयते जीवे वारि तरंग चञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम।।

अर्थात–मनुष्य की आयु अधिक से अधिक सौ वर्ष की कही गयी है। उसका आधा भाग रात्रियों में निकल गया शेष आधे भाग का आधा भाग बुढ़ापे व जवानी में निकल गया। उसमें से

कुछ भाग आधि–व्याधि, दु:ख व सेवा आदि में गया, शेष चंचल वारि–तरंग के समान विलीन हो गया। इस मनुष्य जीवन में प्राणियों को सुख कहाँ से हो सकता है?

मनुष्य शक्ति का केन्द्र बनकर आता है क्योंकि उसका आधार भी शक्ति है। ज्यों–ज्यों संसार चक्र में उलझता है त्यों–त्यों ही उसकी शक्ति व्यय और अपव्यय होती रहती है। मनुष्य का कोई क्रिया–कलाप ऐसा नहीं है जिसमें उसकी शक्ति का निष्कासन न होता रहता हो। यदि मनुष्य वाणी द्वारा कोई शब्द कहता है तो वे शब्द वाणी की शक्ति द्वारा दूसरों पर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार मनुष्य किसी को देखता है तो उसकी आँखों की शक्ति का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। इसलिए साधारणतया आँखों के सामने होने वाले कार्य–कलापों को ही ठीक समझा जाता है। इसी प्रकार यदि कोई किसी से प्यार करता है तो वह अपने प्यार के अभिनय से उसको अपनी शक्ति देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जितनी शक्ति जिस व्यक्ति में होती है, वह अपनी वाणी के द्वारा, दृष्टि के द्वारा, मन के द्वारा, दूसरों को दिया करता है और जिन्हें यह शक्ति प्रदान की जाती है उनका भला भी यत्किंचित मात्र होता है। इसके अतिरिक्त जो लोग शक्ति का केन्द्र हैं, सर्व सामर्थ्यवान हैं उनके द्वारा वही शक्ति दुगुने, चौगुने रूप में परिस्फुरित होकर लोगों को प्राप्त हुआ करती है और उतना ही अधिक उन लोगों का भला होता है। 'सिद्ध' वह कहलाते हैं जो सब प्रकार से सामर्थ्यवान हैं और युक्तयोगी हैं। जगदाता भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार कहा है:–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजेतेन्द्रिय:।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म–काञ्चन:।।

अर्थात्–जिसकी आत्मा ज्ञान–विज्ञान से पूर्णरूपेण तृप्त है और जो विकार रहित पूर्ण स्थिति को पहुँच चुका है, उसको युक्त योगी कहते हैं। ज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे नियमों को समझ करके उन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना और पूर्णरूपेण आत्म–साक्षात्कार कर लेने का नाम 'विज्ञान तृप्तात्मा' कहलाता है। जो योगी इस प्रकार की स्थिति में पहुँच जाता है, उसका मन विकार रहित हो जाता है और वह अपने स्वरूप में स्थित में रहा करता है। इसी प्रकार के योगी सिद्ध–योगी कहलाते हैं। ये लोग सब प्रकार से पूर्ण सामर्थ्यवान और शक्तियों के दाता होते हैं। अपनी परिपूर्णतम् स्थिति को पाकर वही योगाचार्य सर्वसाधारण के हितार्थ शक्ति संचार किया करते हैं। इसी का नाम शक्तिपात है। इस शक्तिपात की विभिन्न प्रकार की कई गतियाँ हैं जिनके द्वारा प्राणिमात्र में शक्ति संचारित हुआ करती है। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि मनुष्य शक्ति को लेकर संसार में जन्म लिया करता है और वह अपने जीवनकाल में जितनी शक्ति उसके मन के खजाने में जमा रहती है उसका प्रयोग इन्द्रियों के द्वारा लोगों पर करता रहता है। उसके प्रभाव से जितना भी हो सकता है लोग लाभ उठाते हैं। शक्ति संचार का मार्ग सर्वसाधारण के लिए भी वही है और पूर्ण सिद्धों के लिए भी वही है, किन्तु विशेषता इतनी रहती है क्योंकि सिद्ध लोग शक्ति के केन्द्र होते हैं, इसलिए उनका प्रभाव क्षण–प्रतिक्षण संसार में आने वाले व्यक्तियों पर पड़ता ही है, इसी कारण इस प्रकार के योगी के लिए कहा

गया है:-

यस्मिन् देशे वसेद्योगी ध्यान योग विचक्षणः।
सोऽपिदेशो भवेत् पूतः किम्पुनस्तस्य बान्धवाः।।

अर्थात्- जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश भी पवित्र हो जाता है। उसके भाई बान्धवों का तो कहना ही क्या? इसका कारण केवल मात्र इतना ही है कि सिद्धयोगी सर्वसामर्थ्यवान होते हैं। इसीलिए उनका मन जिस-जिस के लिए जैसे-जैसे संकल्पों से पूर्ण होगा उसका उसी प्रकार का परिणाम हो जाना बिल्कुल सम्भव है। जिस समय मनुष्य परम पुण्योदय हो जाने के बाद सिद्धसंगति को प्राप्त होता है तो सिद्ध लोग उसे दीक्षा देकर उसमें पूर्णरूपेण शक्ति का उत्थान कर देते हैं।

सिद्धों का दीक्षा-प्रकार और शक्तिपात

संसार में गुरूदेव का शिष्यों से सम्बन्ध की स्थापना के लिए एक विशेष प्रकार का क्रिया-कलाप है उसके अनुसार शिष्य गुरूदेव के पूजनार्थ वस्त्राभूषण आदि लेकर आया करते हैं और विधिपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य अर्पण करके गुरूदेव का ईश्वरीय पूजन करके मन्त्रोपदेश ग्रहण करते हैं। यह दीक्षा की साधारण विधियाँ हैं, जो साधारण रूप से आस्तिक समाज में प्रचलित है। इस विधि के पालन कर लेने पर गुरू-शिष्य के बीच एक नया सम्बन्ध कायम हो जाता है। गुरूदेव समझते हैं यह मेरा शिष्य है और शिष्य समझता है ये मेरे गुरूदेव हैं। इस सम्बन्ध के स्थापित हो जाने पर गुरू शिष्य का सम्बन्ध दृढ़तर हो जाता है और शिष्य अपने गुरू की आज्ञाओं का पालन करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है। वस्तुतः दीक्षा शब्द का अर्थ क्या है? इसका ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है:-

दिव्य ज्ञान यतोदद्यात् कुर्यात्पापक्षयं ततः।
तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्व तंत्रस्य सम्मता।।
ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम्।
अतो दीक्षेति संप्रोक्ता दीक्षा तंत्रार्थ वेदिभिः।।
दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाप पद्धतिः।
तेन दीक्षोच्यते मंत्रे स्वागमार्थ बलाबलात्।।

अर्थात्-जिस क्रिया के द्वारा दिव्य ज्ञान दिया जाय एवं पाप क्षय करके शिव तादात्म्य को प्राप्त कर पूर्णरूपेण समाहित हो जाय, उस क्रिया का नाम दीक्षा है। हमारे शास्त्रों में दीक्षा के चार प्रकार प्रमुख है, जो सिद्धों के द्वारा ही किये जाते हैं। सिद्ध लोग अपने नेत्रों से, स्पर्श से, संकल्प से या शब्दों से दीक्षा दिया करते हैं।

दृग-दीक्षा

नेत्रों में इतनी बड़ी शक्ति होती है और नेत्रों के द्वारा शक्ति को बढ़ा करके क्या-क्या

किया जाता है? इसका परमोत्कृष्ट उदाहरण आदि गुरु भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रजी के जीवनी में बड़े स्पष्ट रूप से मिलता है। एक बार जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी वृन्दावन धाम में गायें चरा रहे थे। गायें और ग्वाल–बाल शनैः–शनैः जमुना तट पर पहुँच गए। जमुना का वह तट था, जहाँ पर कालीय नाग निवास करता था। उस स्थान को कालीदह कहते हैं। वहाँ पर गर्मी से तपे हुए ग्वाल–बालों ने जल पिया और सभी मूर्छित हो गये।

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघात प्रपीडिताः।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृपार्ता विषदूषितम्।।
विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरुद्वह।।
वीक्ष्यतानवैतया मूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।
ईक्ष्याऽमृतवर्षिन्या स्वनाथान्सञ्जीवयत्।।

अर्थात्–गायों, ग्वालों और गोपों ने गर्मी से पीड़ित होकर जमुना होकर जमुना तट पर जाकर प्यास के कारण दूषित जल को पी लिया और उसके पीने से उनके प्राण शरीर से निकल गये, किन्तु थोड़ी ही देर के बाद योग–योगेश्वर जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अमृत वर्षाने वाली अपनी दृष्टि से देखा और अपना जानकर उन सबको जीवित कर लिया। यह जगदात्मा श्रीकृष्ण की पवित्र दृष्टि का प्रभाव था कि मरे हुए ग्वाल–बाल और गायें जिनके प्राण शरीर से निकल गये थे, फिर जिन्दा हो गये। श्री गुरुदेव जिस समय अपनी कृपा दृष्टि से अपने शिष्यों को निहारते हैं तो उनके अन्दर शक्ति संचरित होकर विविध प्रकार के अनुभव उनके सामने आने लगते हैं और उनका मन जो अभी तक कभी भी समाहित नहीं होता था, समाहित होने लगता है। इस दीक्षा को हमारे ग्रंथों में **दृग दीक्षा** कहा गया है।

वाग्दीक्षा

यह दूसरे प्रकार की दीक्षा है – यह वाणी से दी जाती है। सामर्थ्यवान गुरुदेव अपने मन में संचित हुई शक्ति को वाणी के द्वारा अपने शिष्यों में संचारित करते हैं, उसी का नाम **वाग्दीक्षा** है। गुरुदेव मन्त्र को चैतन्य बना करके अपनी वाणी के द्वारा उच्चारण किया करते हैं। जिस मन्त्र के अन्दर गुरुदेव का शक्ति संचार नहीं है वह केवल मात्र वाक्जाल ही है। र, म, च, ट, स, च ये सारे के सारे वर्ण हैं और उनका उत्पत्ति स्थान आकाश है। सभी मन्त्रों के अन्दर स्वर और व्यंजन मिले रहा करते हैं। 'राम' शब्द भी इन्हीं अक्षरों से बनता है और काम शब्द भी इन्हीं अक्षरों से बनता है। राम, काम, श्याम, दाम–हम किसी भी शब्द का उच्चारण करें, उसका तब तक कोई भी अर्थ नहीं जब तक कि इसके उच्चारण में मन का योग नहीं। इसलिए मंत्र भी तब तक मंत्र नहीं है जब तक उसके अन्दर चैतन्यता प्रदान करके गुरुदेव अपने मुखारविन्द से उपदेश नहीं करते। शक्तिपूर्वक वाणी के द्वारा शब्दोपदेश करना ही वाग्दीक्षा का मूल तत्व है। ठीक प्रकार से की गई यह दीक्षा ही मनुष्य को अवश्य परम श्रेय तक पहुँचा देती है। कई वर्ष

पहले जिला महेन्द्रगढ़ में झोझूकला गाँव में हमें जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उस गाँव के आस-पास छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। स्वयं वह गाँव भी एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। उस गाँव के निवासियों ने हमें एक अद्‌भुत घटना बताई और साथ जाकर वह स्थान दिखलाया जहाँ पर पहाड़ की चोटी टूट जाने पर उसके अन्दर एक गुफा निकली और अचानक उस गुफा से एक सिद्ध योगी राज निकले जिनकी आयु हजारों वर्ष की जान पड़ती थी। दाढ़ी और सिर के बाल सफेद थे। जिस समय वह महात्मा गुफा से बाहर निकले अकस्मात् उनकी दृष्टि के सामने एक पुजारी पड़ा। पुजारी बहुत बड़ा स्वाध्यायशील था। उसने मन्त्रों के बड़े-बड़े अनुष्ठान किये थे, किन्तु वह अभी तक किसी प्रकार की सफलता नहीं पा सका था। योगदर्शन का लेख है-

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।

देवा, ऋषयः, सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्त इति।।

अर्थात्-स्वाध्यायशील व्यक्ति को अपने इष्टदेव के भी अवश्य दर्शन होते हैं और उसके अतिरिक्त ऋषियों, सिद्धों के भी दर्शन होते हैं। वे उसके काम किया करते हैं। पुजारी अपने तीव्रतम स्वाध्याय तप के किसी भी परिणाम को अभी तक नहीं पा सका था किन्तु ज्यों ही वह पहाड़ टूटने लगा वह योगीराज गुफा से बाहर निकले पवित्र दृष्टि से उस पुजारी की ओर देखा और साथ ही साथ महात्मा ने अपनी वाणी से "**हरिहर बोल बेटा**" यह कह करके वाग्दीक्षा दे दी, जिसके फलस्वरूप पुजारी को तत्काल अनुभूतियाँ जारी हो गयी और वह दिव्य-दर्शनों का अधिकारी बन गया। थोड़े समय में ही उस पुजारी ने अपने आपको सकल सिद्धियों का भाजन बना लिया। उस गाँव के लोगों ने हमें बतलाया कि उस पुजारी के द्वारा भी अनेक लोगों को वरदान प्राप्त हुए।

स्पर्श दीक्षा

परम करुणार्णव गुरुदेव अपने शिष्यों में शक्ति संचार करने के लिए कृपापूर्वक जब उनके सिरों से अपने हाथ का स्पर्श करते हैं उसको **स्पर्श दीक्षा** कहते हैं। सिर से कर स्पर्श कराने का नियम हमारे भारतवर्ष में ऋषियों के समय से बराबर चला आ रहा है। साधारणतया छोटे लोग बड़ों को नमस्कार करते हैं और बड़े लोग अपने शिष्यों का कर स्पर्श करके आशीर्वाद देते हैं। यह रीति हमारे भारतवर्ष में ही है, दूसरे देशों में नहीं है। मनुजी महराज का लेख है:-

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

भगवान मनु का यह संकेत स्पर्श दीक्षा की ओर ही है। छोटे-बड़ों को नमस्कार करें। यह भी स्पर्श दीक्षा का ही संकेत है। हमारे सिद्ध योगीराजों के इतिहास में स्पर्श दीक्षा का स्थान बहुत ऊँचा है। हर एक व्यक्ति के हाथों की उँगलियों से तेजस्वी धारायें निकलती रहती हैं और

ये धारायें साधारण लोगों की अपेक्षा योगीराज लोगों के हाथों में अति तीव्रतम देखने में आती है। जब कोई गुरूदेव अपने शिष्यों के सिर को दाहिने हाथ से स्पर्श करके आशीर्वाद देता है और कहता है, आयुष्मान् भव! इसका अर्थ है कि उसकी आयु वृद्धि अवश्य ही होगी। कुछ समय पहले उज्जैन में डा0 दुर्गाशंकर नागर निवास करते थे और वह स्पर्श शक्ति के द्वारा रोगियों का इलाज किया करते थे। बीमार मनुष्य को जमीन पर लिटा देते थे और उसके सिर से लेकर पैर तक हाथ के स्पर्श से औपचारिक ढंग से रोग निवारण करते थे। यह भी हाथ की उँगलियों से निकले विद्युत प्रवाह की शक्तियों का संकेत है। कलकत्ता में श्रीरामकृष्ण परमहंस निवास किया करते थे, उनके सामने विवेकानन्द आये और उन्होंने अपनी जिज्ञासा को जाहिर किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने श्री विवेकानन्द जी को स्पर्श दीक्षा देकर शक्ति संचार किया, उसके फलस्वरूप श्री विवेकानन्द जी में महान शक्ति का उदय हुआ और उन्होंने देश-विदेश में योग का बहुत प्रचार किया। स्पर्श दीक्षा के विषय में कुलार्णव तन्त्र में इस प्रकार का लेख मिलता है:-

यथा पक्षी स्वपक्षाभ्यांशिशून् संवंधयेच्छनैः।
स्पर्श दीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये।।

अर्थात्-जिस प्रकार पक्षी अपने पखों के स्पर्श से अपने बच्चों को बढ़ाया करते है उसी प्रकार स्पर्श दीक्षा से गुरुदेव अपने बच्चों को बढ़ाया करते है।

संकल्प-दीक्षा

संकल्प दीक्षा के विषय में कुलार्णव तन्त्र में लिखा है:-

यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यानमात्रेण पोषयेत्।
वेध दीक्षोपदेशश्च मानुषस्य तथाविधः।।

अर्थात्-जिस प्रकार से कछुआ अपने चिन्तन मात्र से अपने बच्चों की पुष्टि करता है उसी प्रकार गुरुदेव संकल्प मात्र से अपने शिष्यों की पुष्टि किया करते हैं। जिसका मन शक्तिशाली है वह जिसका हिताहित चिन्तन करता है, उसका मन चिन्तित प्राणी पर अवश्य होता है। एक बार एक महात्मा दिल्ली में योग प्रचार कर रहे थे। महात्मा अच्छे शक्तिवान व अन्तर्दृष्टि वाले थे। उनका एक शिष्य कहीं पर बीमार हो गया। उस बीमार शिष्य का बहुत बार स्मरण होता रहा। उसकी कुशलता पूछने के लिए उन्होंने एक शिष्य को भेजा, खाने के लिए कुछ फल भेजे, किन्तु जाने वाले ने जल्दी लौटकर खबर नहीं दी कि उनके उस बच्चे का क्या हाल है? महात्मा की चिन्ता अधिक बढ़ती गयी और बार-बार चिन्ता करते ही रहे। सायंकाल के सत्संग में उनका एक शिष्य आया, उसने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा, "गुरुजी आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं, वह तो बिल्कुल ठीक हो गया।" महात्मा ने कहा, "तुम्हें क्या पता? उसने कहा-" मुझे निश्चय ही कुछ पता नहीं, किन्तु क्योंकि आप चिन्ता कर रहे हैं, अतः उसका कोई बालबाँका नहीं कर सकता। वह तो बिल्कुल ठीक होगा।" बात सही निकली। योगीराज

का शक्तिवान मन अपने जिस बच्चे की चिन्ता कर रहा था, वह बिल्कुल पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गया। जिस समय वह महात्मा उसके लिए अत्यधिक चिन्तित थे, ठीक उसी समय उस बच्चे ने देखा कि गुरुदेव सिरहाने बैठे हुए है और उस बच्चे का सिर गोद में लिए हुए है। वह बालक देखता है कि यमराज सामने है, मृत्यु का समय है। उसके गुरुदेव मचान पर बैठ गये और उसी मचान पर अपने उस बालक को बुला लिया। जब उस बालक ने देखा कि यम उस पर वहाँ भी प्रहार करना चाहता है। तब श्री गुरुदेव शून्य आकाश में खड़े होकर कहने लगे–बेटा तुम यहाँ चले आओ। गुरुदेव के इशारे पर वह बच्चा भी शून्य आकाश में खड़ा हो गया और फिर वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। दो दिन बाद योगी राज को सन्देश मिला कि उनका वह बालक पूर्णरूपेण स्वस्थ है। उस बालक का स्थूल भाग से मचान पर पहुँचना, अण्ड से ब्रह्माण्ड में जाना और मचान से शून्य आकाश में पहुँचना ही शून्य शिखर में पहुँचना था। यह स्थान काल के स्थान से परे हुआ करता है। अतः गुरुदेव अपने जिस बालक के लिए अपने मन में शुभ–संकल्प रखेंगे और हितार्थ चिन्तन करते रहेंगे तो दिन प्रतिदिन वह पुष्टि को पाता रहेगा और शक्ति संचारित होती रहेगी। इसी का नाम संकल्प दीक्षा है जिसमें संकल्प द्वारा ही शक्ति संचार किया जाता है।

❑❑❑

जिस व्यक्ति को इस बात का भान हो जाता है कि सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला परमेश्वर मुझ में वास करता है, तब उसकी समस्त कामनायें नष्ट हो जाती हैं। जब उसे ज्ञात हो जाता है कि वह मैं ही हूँ जो सब कामनाओं को तृप्त करता है, तब उसके जीवन में अशान्ति नहीं रहती। उसे शाश्वत् शान्ति, अखण्ड शान्ति, परम शान्ति का लाभ होता है। परमात्मा और अपनी आत्मा के अद्वैत का ज्ञान प्राप्त हुए बिना शान्ति उपलब्ध होना सर्वथा असंभव है।

युक्ततम योगी कौन?

भगवान ने गीता में अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा दी और यह भी कहा कि जो अत्यन्त श्रद्धावान होकर सिद्धि शक्तियों से युक्त होने पर भी मुझ में अपनी अन्तरात्मा को समाहित किये रहते हैं वे युक्ततम योगी है। सर्वश्रेष्ठ योगी है। सिद्ध पुरुष तो संसार में बहुत हो सकते है जिन्होंने अपनी साधना व तप के बल पर प्रकृति पर अधिकार पा लिया है। जो सृष्टि रचना की सामर्थ्य भी रखते है किन्तु वे युक्ततम योगी कहलाये, यह कोई आवश्यक नहीं। योगी तो विश्वामित्र भी थे, सृष्टि रचना की सामर्थ्य थी, किन्तु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी ने उन्हे बहुत दिनों तक ब्रह्मर्षि नहीं कहा। विश्वामित्र ने कई बार वशिष्ठ जी के साथ दुर्व्यवहार किया। उनके कामधेनु को बलात् ले जाने का दुस्साहस किया, किन्तु सफल नहीं हुये। यहाँ तक कि उनके पुत्रों की भी हत्या कर दी किन्तु वशिष्ठ जी ने अपना धैर्य नहीं खोया। क्षमा ब्राह्मण का परम धन है इसलिये वे उनके अपराधों को क्षमा करते रहे। अन्तस् में विद्यमान अहंकार का बोध हो गया। वे अब और दृढ़तर समाधि का अभ्यास करने लगे। बहुत काल के बाद अहंकार विगलित हुआ। अब वे 'क्षीण कल्मषाः' की डिग्री से युक्त हो गये। निष्पाप हो गये। उनका तपोतेज दिग्–दिगन्त तक फैलने लगा। चित्त पूर्ण निर्मल हो गया। अब वशिष्ठ जी ने उन्हें ब्रह्मर्षि कहकर सम्बोधित किया और वे सप्तर्षि मण्डल में परिगणित हुये।

योग दर्शन में पतञ्जलि जी ने सिद्धियों की प्राप्ति में पाँच कारण बताये है। '**जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः।**' अर्थात् सिद्धि जन्म से, औषधि से, मन्त्र से, तप से और समाधि के अभ्यास से प्राप्त की जाती है। पक्षियों में जन्म से ही आकाश में उड़ने की क्षमता होती है। औषधि प्रयोग से ही शरीर को दीर्घजीवी बनाया जाता है। पारद आदि के प्रयोग से आकाश गमन की क्षमता आती है। ऐसे रस शास्त्रों में वर्णित है। मन्त्र बल से अलौकिक शक्ति मिलती है यह सभी जानते है। स्वाध्याय से इष्टदेव का दर्शन होता है। परमगुरुदेव महाप्रभु रामलाल जी महाराज ने देवरहा बाबा जी को 'खेचरी–सिद्धि' का मन्त्र देकर शक्ति संचार किया है इसी से वे दीर्घजीवी व खेचर सिद्ध महापुरुष हुये। महाप्रभु जी ने अपनी डायरी में गोहाटी आसाम में मयम् गाँव का वर्णन किया है। वहाँ के लोगों में मन्त्र बल से अद्भुत क्षमता का वर्णन किया है। मन्त्र बल से वे शरीरों को भी बदलने की क्षमता रखते थे। तप बल भी सिद्धियों का जनक होता है। तप बल से ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते है विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते है। तप और ब्रह्मचर्य से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया है।

इन्द्रियों का दमन सब से बड़ा तप है। जो इन्द्रियों का दमन करता है वह आत्मतेज की वृद्धि करता है। दम तेज की वृद्धि करता है, दम से ही तेज को धारण किया जाता है। जिसमें दम का अभाव है वह व्यक्ति तेज को धारण नहीं कर सकता है। '**नातपस्विनो योगः सिद्धयति**' जो

तपस्वी नहीं है उसे योग सिद्ध नहीं होता। तप का फल बताते हुये पतञ्जलि जी कहते हैं– कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः' अर्थात् तप से रजोगुण और तमोगुण के नष्ट हो जाने पर योगी को कायिक–अणिमा आदि तथा दूरदर्शन, दूरश्रवण आदि सिद्धि मिलती है। आजकल कुण्डलिनी जागरण और शक्तिपात की कक्षायें चल रही है। कितने का जागरण होता है? देखने की बात है। **'असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः'** भगवान् कहते है असंयतात्मा व्यक्ति योगी नहीं बन सकता। इन्द्रिय संयम का फल मोक्ष बताया गया है। पाँचवें प्रकार की सिद्धि समाधिजा सिद्धि कहलाती है। पूर्ण रूप से मन की एकाग्रता जन्य समाधि से अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती है। समाधि से संयम तक जाने के बाद विभूतियाँ प्रकट होती है। योगदर्शन के विभूति पाद में जितनी विभूतियाँ वर्णित है उन सब का आधार संयम है। ऐसे योगी परमाणु से लेकर परम महत्तत्व (बुद्धि) तक प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों पर अपना अधिकार रखते है। योगी सूक्ष्म व्यवहित (ढकी हुई) तथा विप्रकृष्ट–दूर से दूर वस्तु का ज्ञान व साक्षात्कार कर लेता है। यहाँ यह बात समझने की है कि जन्म, औषधि, मन्त्र एवं तप से जो सिद्धियाँ मिलती है उनका कर्मसंस्कार बनता है जबकि समाधिजा सिद्धि का कोई संस्कार नहीं बनता। **'तत्र ध्यानजमनाशयम्'** ध्यान–समाधि जन्य सिद्धियों का कोई कर्माशय नहीं बनता। सिद्धियों के लिये योगी को कोई अलग से साधना नहीं करनी होती है। समाधि से तत्वज्ञान तो होता ही है साथ मे सिद्धियाँ भी स्वतः योगी मे रहती है। वैसे भी समाधिप्राप्त योगी आप्तकाम होता है। विषयों से पूर्ण वितृष्णा होता है। इच्छा के अभाव मे कोई कर्म अथवा संस्कार शेष नहीं रहते। कर्मबन्धन का क्षयसमाधि से ही होता है। अन्य साधनों से प्राप्त सिद्धियों के रहते क्लिष्ट संस्कारों के बनने की सम्भावना रहती है जबकि समाधि रूप सिद्धि से क्लेश और कर्म की निवृत्ति होती है।

योगी का लक्ष्य रहता है कि उसकी चिति शक्ति उन परम चैतन में मिल जाये। भगवान् मे समा जाने का साधन समाधि है। अनन्य भक्ति से समाधि होती है तभी परमात्मतत्व मे प्रवेश सम्भव है। भगवान् में अनन्य भक्ति से परमात्मा का ज्ञान, दर्शन तथा उनमें प्रवेश मिल सकता है। बिना उनकी इच्छा के ये कार्य सम्भव नहीं है। तभी – **'ज्ञातुम्, द्रष्टुम च तत्वेन प्रवेष्टुम च परंतपो'** की बात सम्भव है। अनन्य भक्ति के अभाव मे बड़े–बड़े योगियों को भी मोह हो जाया करता है। श्री भागवत् के अनुसार ब्रह्माजी को भगवान् की लीलाओं को देखकर मोह हो गया था। भगवान् ने ब्रह्मा का मोह भंग किया। ब्रह्मा जी ने उनके अलौलिक ऐश्वर्य एवं योग विभूति को देखा और फिर बहुत प्रकार से क्षमा माँगी और उनकी परम–पुरुष के रूप मे स्तुति की। जो गुरुदेव व भगवान् का पूर्ण शरणागत होता है उसे बुद्धि–योग की प्राप्ति होती है जिससे उसे फिर मोह नहीं होता। समर्थ योगी होने पर भी जो गुरुदेव और गोविन्द को अपने हृदय मे धारण करता है वह युक्तात्म योगी है। **'गुरु लोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत'** जो मुक्त होना चाहता है उसे गुरुमूर्ति का हृदय से लोप नहीं करना चाहिये। यह गुरुगीता मे भगवान् के वचन है। जिन पुरुषों मे राग–द्वेष, काम–क्रोध नहीं है, उनके लिये परमात्मा सर्वत्र दृष्टिगोचर है।

भगवान के वचन है–

काम क्रोध वियुक्तानाम् यतीनाम् यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणम् वर्तते विदितात्मनाम्।।

अर्थात् जो काम–क्रोध से मुक्त है। ऐसे योगी को ब्रह्म के दर्शन सर्वत्र होते है वह योगी आत्मज्ञ है। जो सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करता है वही सबसे बड़ा योगी है '**वासुदेव: सर्वमिति स: महात्मा सु दुर्लभ:।**'

अर्थात् जिसकी दृष्टि में वासुदेव ही वासुदेव है ऐसा, महात्मा योगी अत्यन्त दुर्लभ है। अत: योगी को सर्वशक्ति सम्पन्न होने पर भी ब्रह्मभाव से स्थित रहना चाहिये जो गुरुकृपा से ही संभव व सुलभ है।

वैराग्य

किसी गृहस्थ के यहाँ एक विरक्त साधु भोजन करने आये। उनके लिए गृहस्थ ने खीर–जलेबी, लड्डू, बरफी, पूरी–साग आदि तैयार करवा कर परोसा। उस भोजन सामग्री को देखकर उन्होंने कहा – 'यह साधुओं और विरक्तों के योग्य नहीं है, उनको ऐसा भोजन नहीं देना चाहिये। उनको तो रूखी–सूखी रोटी अच्छी लगती है।' यह कहकर भोजन नहीं किया और वहाँ से जाने लगे। जाते समय गृहस्थ उनको बढ़िया ऊनी चादर देने लगे, तब वे बोले – 'हमें इसकी आवश्यकता नहीं।' और बहुत अनुरोध करने पर भी उसको नहीं लिया। तब उस गृहस्थ का उनमें श्रद्धा–विश्वास पहले की अपेक्षा अधिक हो गया।

इससे समझना चाहिये कि यदि वैराग्य है तो वैराग्य के साथ सारे गुण अपने आप ही आ जाते हैं। किन्तु किसी में विद्या और गुण भी है तो वे गुण वैराग्य के बिना स्थायी नहीं रह सकते। अत: जहाँ वैराग्य है, वहाँ सब कुछ है। इसलिए साधक को संसार के समस्त भोगों से, शरीर से, सम्पत्ति से और परिवार से – सबसे तीव्र वैराग्य करना चाहिये। महर्षि पतंजलि जी ने समाधि की सिद्धि के लिए अभ्यास और वैराग्य – ये दो साधन बतलाकर वैराग्य के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है –

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्य।

निरतिशय सुख की प्राप्ति और आत्मसाक्षात्कार

– आचार्य रामप्रताप शास्त्री –

निरतिशय सुख प्राप्ति उस अवस्था का नाम है – जहाँ परम सुख की प्राप्ति होने पर किसी प्रकार के अन्य सुख की अभिलाषा न रह जाय। दूसरे शब्दों में परम सुख मिल जाने पर प्राप्तव्य कोई वस्तु नहीं रह जाती है। आत्यन्तिक सुख वही है, जिससे बढ़कर कोई दूसरा सुख होता ही नहीं है। इसी परम लक्ष्य को चरम लक्ष्य, परम पुरुषार्थ, मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य आदि विभिन्न शब्दों में अभिहित किया गया है और इसकी प्राप्ति के अनन्तर किसी प्रकार की कामना या इच्छा की उत्पत्ति होती ही नहीं है। परमार्थ का अर्थ ही यह है कि किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा न रह जाय। वस्तुतः कोई ऐसी वस्तु ही शेष नहीं रह जाय, जिसके लिए इच्छा उत्पन्न हो। इसी को 'निरतिशय सुख' या 'आत्यान्तिक दुःखनिवृत्ति' कहा जाता है। इसीलिए भगवती श्रुति कहती है –

न स भूयोऽभिजायते सोऽमृतत्वाय कल्पते।

अस्तु ! सृष्टि प्रतिपादन करने वाली जितनी श्रुतियाँ हैं, उनकी एकवाक्यता भगवान् व्यास ने **'न वियदश्रुतेः। अस्ति तु गौण्यसम्भवात्।'** (अ. 2/3/1–3) इत्यादि सूत्रों में उक्त प्रकार से की है। सृष्टिक्रम में वर्णित जो पच्चीस तत्व कहे गये हैं, उन सबमें परस्पर कार्य–कारण–भाव श्रुतियों में दिखाया गया है। वहाँ सबका मूल कारण परमात्मा का साक्षात्कार ही है। कार्य कारण भाव दिखाने का यही अभिप्राय है। तभी तो तत्वों में परस्पर भाव भी श्रुतियों द्वारा वर्णित है।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।

तात्पर्य यह है कि पहले इन्द्रियों का ज्ञान होने के बाद ही विषयों का ज्ञान होता है। विषयों के ज्ञान के बाद मन का, उसके बाद बुद्धि का – इस प्रकार पूर्व–पूर्व के बाद उत्तरोत्तर का ज्ञान करते–करते सबसे परे परमात्म तत्व का साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार बाह्य वस्तु के ज्ञान होने के बाद ही उसके अन्तःस्थ अर्थात् भीतरी वस्तु का ज्ञान होना सम्भव है। इसी प्रकार परमात्मा का सर्वान्तःस्थ और सर्वान्तर्यामी होना भगवती श्रुति बताती है। इस प्रकार स्थूल पदार्थ के ज्ञान के बाद ही सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान होना सम्भव है। सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम का ज्ञान या साक्षात्कार हो सकता है।

समस्त कारणों का भी कारण सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर या सूक्ष्मतम सर्वान्तर्यामी परमात्मा ही है और अत्यन्त सूक्ष्म कुशाग्र बुद्धियों को श्रुति की सहायता से आत्मा का साक्षात्कार सम्भव है। परमात्मा का यथार्थ स्वरूप बताने में श्रुति भी अपने को असमर्थ पाती है और इसीलिए

बार–बार कहती है – **'नेति, नेति' 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'** इतना ही नहीं, 'बृहदारण्यक' में लिखा है – **'वेदा अवेदाः'** अर्थात् समस्त पदार्थों का बोध कराने वाले वेद भी परमात्मा का सम्यक् बोध कराने में असमर्थ रहते हैं। फिर भी दुर्बोध होने पर भी श्रुति अपना प्रयत्न नहीं छोड़ती। इतना ही नहीं, **'अन्नं ब्रह्म'** कहकर अत्यन्त मंदबुद्धियों की भी दृढ़ भावना को सुदृढ़ कराती है। किसी भी वस्तु में सर्वोत्तम ब्रह्म की भावना हो, यही श्रुति का मुख्य उद्देश्य है। माता की तरह **'अन्नं ब्रह्म'** कहकर वह हमें ब्रह्म–जिज्ञासा की ओर प्रेरित करती है। सहज स्नेहमयी माँ की भाँति श्रुति भी कभी वंचना नहीं करती, प्रत्युत यथाधिकार अन्न से प्राण, प्राण से मन, मन से बुद्धि की ओर हमें प्रेरित करती है। बाद में पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाने पर –**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** का उपदेश देती है।

अधिकार भेद से अनेक मार्ग ब्रह्म साक्षात्कार के लिए कहे गये हैं। वे श्रुतियाँ प्रणवादि मन्त्रों का जप और प्रतिमादि पूजन से परम लक्ष्य ब्रह्म साक्षात्कार की ओर हमें केवल प्रेरित ही नहीं करतीं, प्रत्युत उसमें प्रतिष्ठित कराने के लिए उपाय भी बताती हैं। वे कहती हैं कि परमात्म सदन के प्रवेश द्वार पर ही द्वारपालों की तरह प्रतिबन्धक रूप में विषय और इन्द्रियाँ विद्यमान रहती हैं। इनको वश में करना नितान्त आवश्यक है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥

इसके बाद श्रुति कहती है – मन और बुद्धि जो अधिकारी वर्ग है, उन्हें ब्रह्मरूप में ही देखो –**यथा मनो ब्रह्म व्यजानात्। प्राणो ब्रह्म व्यजानात्।**

इसके बाद **'ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः'** अनन्य भाव से ब्रह्म में निष्ठा करो। इस प्रकार श्रुत्युपदेश के अनुष्ठान से जब पूर्णता आ जाती है, तभी परमात्मा उसे आत्मीय समझकर देखता है। यही परमात्मा की स्वीकृति है –

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।

आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष का कारण या स्वरूप है। इसमें साधनान्तर की आवश्यकता नहीं रह जाती। साधनान्तर की अपेक्षा का निषेध भी स्वयं श्रुति करती है।

'तमेव विद्वानमृत इह भवति' 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'

अर्थात् उस परमात्मा को जानकर ही मनुष्य अमृत अर्थात् मुक्त हो जाता है। मुक्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है। बल्कि यह सम्यक् ज्ञान ही मुक्ति है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन् परमं ब्रह्म याति नान्येन हेतुना॥

जो मनुष्य सब भूतों में अपने को और अपने में सब भूतों को देखता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है।

अष्टांग योग साधना

डॉ. ऋषि राम शर्मा, लखनऊ

अब हम संक्षेप में धारणा, ध्यान तथा समाधि पर विचार करेंगे। इससे पूर्व जो कहा गया वह ज्ञान की परिधि में आता है। ज्ञान बुद्धि का विषय है किन्तु बुद्धि का ज्ञान मन तथा इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है। धारणा से आरम्भ करके विज्ञान में प्रवेश होता है तथा सम्प्रज्ञात समाधियों एवं असम्प्रज्ञात समाधि के माध्यम से प्रकृति के गुप्त रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है जिसे विज्ञान कहा गया है। जब साधक ज्ञान तथा विज्ञान दोनों से पूर्ण तृप्त हो जाता है तब वह निर्बीज समाधि में प्रवेश करता है और परमात्मस्वरूप में एकात्मता का अनुभव करता है। जगदात्मा श्रीकृष्ण ने ऐसे साधक को युक्त योगी कहा है कि,

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तः इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः।।

अर्थात् युक्त योगी उसे कहा जाता है जो ज्ञान तथा विज्ञान दोनों से पूर्णरूपेण तृप्त है, जो देहाध्यास को त्यागकर अपने शुद्ध सर्वव्यापक, सर्वाधार परमात्मस्वरूप में लीन है, जिसने मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है तथा जिसकी दृष्टि में मिट्टी, पत्थर तथा स्वर्ण समान हैं यानि उनके लौकिक महत्व पर ध्यान न देकर उन्हें लोभरहित निःस्वार्थ भाव से देखता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए ही धारणा, ध्यान तथा समाधि की साधना आवश्यक है। महर्षि पतंजलि ने धारणा की परिभाषा दिया है कि "**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा**"•

अर्थात् चित्त को किसी एक विषय–वृत्ति में बांधकर रखना धारणा है। यही चित्त का एकाग्रता परिणाम कहा गया है कि–

शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्य एकाग्रतापरिणामः।।

अर्थात् चित्त में जब शान्त होने वाली तथा तत्पश्चात उदय होने वाली वृत्ति एक ही हो तब इसे चित्त का एकाग्रता परिणाम कहा जाता है। विचारणीय विषय यह है कि यह एकाग्रता परिणाम कैसे आता है, क्योंकि चित्त में वृत्तियाँ उन फिल्मों की तरह आती हैं जोकि रील में लगी हुई हैं और रील तीव्र गति से प्रोजेक्टर पर घूम रही है। यह एक कटु सत्य है कि यह संसार थियेटर के पर्दे पर दिखने वाली मूवी यानि चल–चित्र की तरह है जिसमें गति भी भ्रान्तिजन्य है और दृश्य भी प्रकाश किरणों का रूपान्तर है। यदि प्रोजेक्टर को रोक दिया जाय तो चलचित्र की गति गायब हो जाती है और यदि रील को निकाल लिया जाय तो दृश्य भी गायब हो जाते हैं। किन्तु यदि सम्पूर्ण रील में एक ही फिल्म लगा दी जाये और प्रोजेक्टर की गति को रोका भी न जाये तो पर्दे पर एक ही दृश्य दिखाई देगा और दृश्यों की विभिन्नता तथा गति दोनों गायब हो जायेगी। ठीक इसी तरह मन की गति पर पूर्ण नियन्त्रण न होने पर भी धारणा के द्वारा जब एक ही वृत्ति पर एकाग्रता होती है तो उसी वृत्ति के विषय में विस्तृत ज्ञान की प्राप्ति होती है। धारणा में ध्याता, ध्यान तथा ध्येय तीनों का अस्तित्व बना रहता है, केवल अन्य विषयों की वृत्तियों का

निरोध हो जाने पर एक ही वृति चित्त में प्रकाशित रहती है। उदाहरण के रूप में जब एक वैज्ञानिक किसी रहस्य को जानने के लिए परीक्षण करता है तब उसका चित्त, उसी विषय पर केन्द्रित रहता है और परिणाम स्वरूप उसे उस विषय के गुप्त गुणों तथा रहस्यों का ज्ञान हो जाता है। धारणा की प्रक्रिया भी इसी तरह का परीक्षण है जिसमें उसका चित्त ही सम्पूर्ण प्रयोगशाला तथा परीक्षण का उपकरण होता है तथा उसे किसी बाह्य पदार्थ तथा उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु यह परीक्षण उतना आसान नहीं जितना मेडीटेशन यानि एकाग्रता का अभ्यास करने वाले समझते हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार तो यम तथा नियमों की श्रद्धा तथा सत्कार के साथ तन, मन तथा धन से पूर्ण तन्मयता एवं पुरुषार्थ से अनुष्ठान करना आवश्यक है तभी धारणा की योग्यता प्राप्त होती है। जगदात्मा श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में धारणा की सिद्धि के लिए व्यवहारिक रूप समझाया है जिसके द्वारा निःसंदेह आत्मसाक्षात्कार, परमानन्द की प्राप्ति तथा परमात्मस्वरूप की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। यहाँ सबसे बड़ी समस्या है कि उन कारणों को समझना जो इस सिद्धि में बाधक हैं तथा इन बाधाओं को किस तरह पारकर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। अतः भगवान श्रीकृष्ण के मुख से कही हुई बातों पर मनन करना चाहिए तथा उन्हें अपने जीवन में उतारना चाहिए। भगवान की वही वाणी अमृत है जो हमें अमरता प्रदान कर सकती है। आवश्यकता है केवल श्रद्धा, विश्वास तथा अनन्य भक्ति की। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
सः सन्यासी च योगी च न निरग्निः च चाक्रियः।।

अर्थात् अपने मन से कर्मफल प्राप्त करने की आशा त्यागकर जो साधक अपना कर्तव्य कर्म करता रहता है, वही साधक सन्यासी भी है तथा योगी भी है न कि अग्नि-स्पर्श न करने का नियम निभाने वाला अथवा कर्म त्याग कर निष्क्रिय होकर बैठने वाला। यहाँ समझने की बात यह है कि कर्मफल की इच्छा से किया जाने वाला कर्म अपना फल देने के लिए प्रारब्ध अवश्य बनेगा और जन्म-मृत्यु का कारण भी बनेगा। अहंकार नष्ट न होने के कारण फल-भुगतान के समय नये कर्म भी बनेंगे और इस तरह कर्मबन्धन का जाल जीव के बन्धन तथा सुख-दुःख का कारण बनता रहेगा। अतः कर्मबन्धन से मुक्ति के लिए कर्मफल का भावनागत त्याग अत्यावश्यक है। धर्म का पालन करने के लिए कर्तव्य कर्म करना भी अत्यावश्यक है, अन्यथा शरीर अधर्म के कर्म करने को विवश होगा अथवा तमोगुण को उत्पन्न करने वाले प्रमाद तथा आलस्य की बाधाओं का आना स्वभाविक है। ऐसी स्थिति में चित्त में धारणा की योग्यता आयेगी ही नहीं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि -

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव आत्मनः बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।।
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

यहाँ पर आत्मा शब्द का दो भावों में प्रयोग हुआ है। एक भाव में आत्मा मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि आदि प्रकृति के गुण तथा विकारों से रहित निर्गुण साक्षी तथा शुद्ध दृष्टा है और दूसरे

भाव में विकारों सहित बुद्धिबोधात्मक आत्मा है जो कि दृष्टा आत्मा का विषय है। देखो यह परमात्मा की माया का कमाल है कि एक ही आत्मा का चार भाव यानि उपदृष्टा, अनुमन्ता, भर्ता तथा भोक्ता के रूप में वर्णन किया गया है। यहाँ पर उनमें से दो भाव यानि उपदृष्टा तथा भोक्ता के रूप में लिया गया है इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि दृष्टा आत्मा के द्वारा भोक्ता आत्मा का उद्धार करना चाहिए, उसे भोगों की दलदल में डूबने से बचाना चाहिए। यह समझना चाहिए कि वासना में लिप्त आत्मा ही अपनी शत्रु है तथा वैराग्य–सम्पन्न होकर परमार्थ चिन्तन करने वाली बुद्धिबोधात्मक आत्मा ही अपनी मित्र है। यदि सर्वसाक्षी यानि जागृत, निद्रा तथा स्वप्न अवस्थाओं की दृष्टा आत्मा के द्वारा देहाध्यास वाली आत्मा पर नियन्त्रण हो जाता है तो वह मित्रवत हो जाती है और यदि वह भोग भोगने के लिए इन्द्रियों का अनुगमन करती है तो वही जन्म–मृत्यु तथा जरा–व्याधि आदि दुःखों का कारण होने से शत्रुवत हो जाती है। अतः धारणा की सिद्धि के लिए बुद्धिबोधात्मक आत्मा को मित्र बनाना चाहिए। तत्पश्चात् शुद्ध प्रदेश में स्थिर आसन पर बैठकर प्राणायाम तथा स्वाध्याय का अभ्यास करना चाहिए ताकि धारणा की योग्यता आ जाये।

धारणा सिद्ध होने पर ध्यान में प्रवेश हो जाता है। महर्षि पतंजलि बताते हैं कि –

तत्र: प्रत्ययैकतानता ध्यानम्

अर्थात् जब धारणा के विषय की वृत्ति का प्रवाह चित्त में निर्बाध गति से चलने लगता है यानि ध्याता, ध्यान तथा ध्येय का सम्बंध अटूट हो जाता है और दृष्टा केवल ध्येय को देखता है तब इस प्रक्रिया को ध्यान कहते हैं। किसी विषय के सत्य को जानने के लिए ध्यान ही वैज्ञानिक परीक्षण है। इसी लिए योग को विज्ञान कहा जाता है। इस वैज्ञानिक विधि के द्वारा चित्त में एकाग्रता परिणाम पुष्ट हो जाता है और उसका समाधि परिणाम में प्रवेश हो जाता है। महर्षि पतंजलि ने समाधि परिणाम परिभाषित किया है कि

"**सर्वार्थतैकाग्रतो क्षयोदयो चित्तस्य समाधिपरिणाम:**" अर्थात् चित्त में सर्वार्थता का विनाश तथा एकाग्रता का उदय होना चित्त का समाधिपरिणाम है। चित्त का स्वभाव तथा गुण है कि उसमें असंख्य विचार प्रत्येक क्षण उदय होते हैं और लुप्त होते रहते हैं। चित्त एक समुद्र की तरह है जिसमें निरन्तर तथा निर्बाध गति से लहरें उठती रहती हैं और लुप्त होती रहती हैं। यह लहरें ही चित्तवृत्तियाँ हैं। प्रत्येक चित्तवृत्ति में कोई विषय रहता है जिसका चित्त को ज्ञान, स्मृति तथा विस्मृति होती रहती है। चित्त में वृत्तियों की विभिन्नता को नष्ट कर एक ही वृत्ति को स्थिर कर देना चित्त का समाधि परिणाम है। इस परिणाम के फलस्वरूप ही ध्यान की सिद्धि होती है। इस प्रक्रिया में दृष्टा, ध्यान की प्रक्रिया तथा ध्यान की स्थिर की गयी वृत्ति का पृथक अस्तित्व बना रहता है। उदाहरण के रूप में जैसे एक वैज्ञानिक को किसी सूक्ष्म वस्तु का अध्ययन करना है तो वह पहले माइक्रोस्कोप का उपकरण तैयार करेगा, फिर उसे वस्तु पर केन्द्रित करेगा तत्पश्चात अपनी आँख माइक्रोस्कोप पर लगाकर उस सूक्ष्म वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करेगा। ठीक इसी प्रकार योगविज्ञान में ध्यान माइक्रोस्कोप है, स्थिर वृत्ति सूक्ष्म वस्तु है तथा दृष्टा आँख है। जैसे माइक्रोस्कोप का उपकरण तैयार करने में बहुत परिश्रम, बुद्धिमत्ता तथा आवश्यक सामग्री की आवश्यकता होती है उसी तरह ध्यान का उपकरण तैयार करने के लिए भी कुछ ऐसा ही पुरुषार्थ आवश्यक है। जिसका संकेत जगदात्मा श्रीकृष्ण ने किया है कि–

संकल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वानशेषत:।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्तत:।।
शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।
यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।
प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शः अत्यन्तं सुखमश्नुते।।

अर्थात् चित्त में कामनाओं की पूर्ति के लिए जो संकल्प बनते हैं तथा उनसे जो चित्तवृत्तियाँ पैदा होती हैं उन सब को पूर्णरूपेण त्यागना होगा, विषय-भोगों की ओर आकर्षित होने वाली इन्द्रियों पर मन के द्वारा नियन्त्रण करना होगा, क्योंकि यही ध्यान की प्रक्रिया में बाधायें उपस्थित करती हैं, ध्यानवृत्ति को पनपने ही नहीं देती। हमारा मन बुद्धि के आधीन होते हुए भी इतना हठी तथा बलशाली है कि बुद्धि को अपना अनुगामी बना लेता है। अतः विवेकज्ञान के द्वारा वैराग्य को पुष्ट करने से तथा निरन्तर चिरकाल तक बुद्धि के द्वारा मन पर धीरे-धीरे नियन्त्रण करना चाहिए, क्योंकि मन रूपी लगाम तो बुद्धिरूपी सारथि के ही हाथ में होती है और बुद्धि को सात्विक धैर्य की शक्ति से बलशाली तथा दृढ़ निश्चय वाली बनाने की आवश्यकता है। जैसे ही मन की वृत्ति नियन्त्रण में आ जाये तो उसे सर्वशक्ति का स्त्रोत आत्मा में लीन कर अन्य कुछ भी नहीं सोचना चाहिए। जब भी मन नियन्त्रण से निकलकर जहाँ भी भागे तो तुरन्त उसे पकड़कर पुनः नियन्त्रण में ले लेना चाहिए। इस अभ्यास को लम्बे समय तक सत्कारपूर्वक करते रहने से तथा विषयों से स्वाभाविक वैराग्य दृढ़ हो जाने से बलशाली तथा चंचल मन भी नियन्त्रण में आ जाता है। नियन्त्रण में आया मन जब शान्त होकर आनन्दस्वरूप आत्मा में लीन हो जाता है तब ज्ञानमयी प्रज्ञा के रूप में बुद्धि एक असीमित तथा अलौकिक सुख का अनुभव करती है जिसके समक्ष सभी विषयभोगों के सुख फीके पड़ जाते हैं, क्योंकि दुःखों का कारण रजोगुण दब जाता है और सतोगुण का प्रभुत्व हो जाता है। इसी सतोगुण में आत्मस्वरूप का अक्षय आनन्द प्रतिबिम्बित होता है। आदि जगत गुरु शंकराचार्य जी ने एक सुन्दर श्लोक से इसी को समझाया है कि –

सत्वं विशुद्धं जलवत् तथापि ताभ्यां मिलित्वा सरणा कल्पते।
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन् सः सदानन्द समृच्छते।।

अर्थात् शुद्ध सतोगुण विशुद्ध जल के समान है, किन्तु जैसे कीचड़ तथा मिट्टी जब जल में मिल जाते हैं तब उसमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता। ठीक इसी प्रकार जब सतोगुण में रजोगुण तथा तमोगुण मिल जाते हैं तब वह अशुद्ध हो जाता है जिससे उसमें ज्ञान तथा प्रकाश गुप्त हो जाते हैं, किन्तु जैसे ही योग-साधना एवं स्वाध्याय के द्वारा रजोगुण तथा

तमोगुण की अशुद्धि साफ हो जाती है तब शुद्ध सतोगुण में आत्मा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है। यही कारण है कि उपनिषद परमात्मा के दर्शन के लिए स्वाध्याय तथा योग की साधना को ही निमित्त मानते हैं कि

स्वाध्यायात् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय से योग तथा योग से स्वाध्याय पुष्ट होते हैं। अतएव स्वाध्याय तथा योग की साधना से परमात्मा के दर्शन होते हैं। इसीलिए रजोगुण के शान्त होने पर तथा तमोगुण का मलावरण हट जाने पर जीवभाव परमात्मभाव में बदल जाता है। इस साधना में निरन्तर लगे हुए साधक के समस्त पापों का मलावरण नष्ट हो जाता है और साधक आसानी यानि स्वाभाविक रूप में ब्रह्मज्ञान तथा परमानन्द की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। भगवान की यह घोषणा है कि '**असंयात्मन: योगो दु:प्राप:** इति मे मति:' अर्थात् मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों पर संयम यानि नियन्त्रण किये बिना न तो योग प्राप्त होता है और न ध्यान की योग्यता आती है।

ध्यानयोग के सिद्ध हो जाने पर समाधि का मार्ग प्रशस्त होता है। समाधि की सिद्धि के बाद कैवल्य की प्राप्ति होती है यानि जीवभाव नष्ट हो जाता है और सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान परमात्मभाव की प्राप्ति हो जाती है। भगवान ऐसे योगी को अपना ही स्वरूप बताते हैं कि–

सर्वभूतस्थिं यो मां भजति एकत्वमास्थित:।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स: योगी मयि वर्तते।।

अर्थात् वह योगी शरीरधारी रहते हुए भी मेरे स्वरूप में रहता है जोकि कैवल्यता को प्राप्त कर सर्वव्याप्त मुझ परमात्मा की उपासना करता है।

(क्रमश:)

मां चेन्न पास्यसि ततो भगवन्ममैव
हानिर्भवेदिति तु नो मननीयमीश।
यर्थेश्वरस्य करुणादिगुणामृताब्धे–
र्दासो हि सीदति जना इति वै क्षिपेयु:।।

भगवन्! हे ईश! आप यदि मेरी रक्षा न करेंगे तो आप यह न समझें कि उससे केवल मेरी ही हानि होगी; किन्तु 'अहा देखो, सर्वेश्वर का सेवक होकर भी दु:ख पा रहा है' यह कहकर जनता भी आपको उलाहना दिये बिना नहीं रहेगी।

प्राणायाम विधि

डॉ. राजकुमारी त्रिखा

पातञ्जल–योग–दर्शनानुसार प्राणायाम के चार मुख्य भेद हुए, पूरक रेचक, सहित कुम्भक तथा केवल कुम्भक। परन्तु अन्य योग ग्रन्थों तथा पुराणों में कहीं तो प्राणायाम के सगर्भ व अगर्भ नाम से दो भेदों का वर्णन मिलता है तो कहीं सबीज व निर्बीज नाम से हठयोग के ग्रन्थों में प्राणायामविधि विस्तार से वर्णित है, परन्तु योगसूत्रों में इसका अभाव है। महाभारत में भी प्राणायाम के प्रसंगों में रेचक पूरक कुम्भक आदि का वर्णन पाया जाता है। प्राणायाम की अनेक विधियों का वर्णन भी महाभारत में विस्तार से वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं प्राणायाम के साधक द्वारा व्यवहार में लाने योग्य सावधानियाँ व प्राणायाम साधना से प्राप्त होने वाले अनेक लौकिक व अलौकिक फलों का भी वर्णन महाभारत में पाया जाता है। सर्वप्रथम हम विविध प्राणायाम विधियों का वर्णन करेंगे।

(1) प्राणापाननियन्त्रणपूर्वक प्राणायाम

प्राणायाम प्रक्रिया से जुड़ स्थित अपानवायु तथा हृदय स्थित प्राणवायु का संयोग करने के लिए प्राण को गहरा अन्दर खींच कर, अपानस्थान की दिशा में, नीचे की ओर ले जाना, प्राणायाम की एकविधा है। इस प्रकारण प्राणायाम करने के (गुदास्थित) अपान (हृदयस्थित) प्राण को अपनी ओर खींचती है तथा प्राण अपान को अपनी ओर। गोरक्षसंहिता में कहा गया है कि वशीचित्ता पुरूष इन दोनों का नियन्त्रण करते हैं।

शरीर की दोनों नासिका रन्ध्रों में श्वास अर्थात् प्राण तथा प्रश्वास अर्थात् अपान की गति एक समान नहीं होती। दो ढाई घन्टे बाद कभी बांई तथा कभी दाहिनी ओर का नासापुट क्रमश: अधिक क्रियाशील होता है। जब इन दोनों में सांस समानरूप से चलती है, तो मन शान्त होता है तथा प्राण सुषुम्ना में चलने लगता है। मेरूदण्ड की बांई ओर इडा तथा दाहिनी ओर पिंगला की स्थिति बताई है। सुषुम्ना इडा व पिंगला दोनों के मध्य कही गई है। महाभारत में प्राण तथा अपान के नियन्त्रण पूर्वक प्राणायाम का विधान किया गया है। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को इस योगविधि का उपदेश देते हुए कहते हैं–कुछ योगसाधक अपान वायु में प्राणवायु का हवन करते हैं, तथा कुछ प्राणवायु में अपानवायु का। अन्य कुछ नियमित आहार करने वाले प्राणायामपरायण योगी प्राण और अपान की गति रोक कर प्राणों का प्राणों में ही हवन करते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार अग्नि में आहुति डाली जाती है, उसी प्रकार गहरे सांस लेकर अपानवायु में प्राणवायु का संयोग किया जाता है, यही अपान में प्राण का हवन है इसी प्रकार शरीर के भीतर की वायु हृदयस्थित प्राण में विलीन होती है यही अपान का प्राण में हवन है। एक अन्य स्थान पर भगवान कृष्ण अर्जुन को ध्यानविधि समझाते हुए कहते हैं–बाह्य

सांसारिक विषयों से मन हटा कर भ्रूमध्य में दृष्टि टिकाकर तथा नासापुटों में गतिशील प्राण व अपान को समगति वाला बनाकर ध्यान करना चाहिए।

पतञ्जलि ने प्राण व अपान की इस साम्यावस्था को प्राप्त करने के लिये किसी विधि का निर्देश नहीं किया है, परन्तु अनुभवसिद्ध योगाचार्यों का अनुभव है कि भस्त्रिका प्राणायाम (हठयोग की एक क्रिया) करने से दोनों नासिकारन्ध्रों की शुद्धि हो जाती है, तथा उनमें प्राण तथा अपान का वेग समान रूप से चलता है। यही प्राणापान का नियन्त्रण है। इस साधना के अभ्यास से साधक का प्राण वश में हो जाता है, तथा वह इच्छानुसार, जहाँ चाहे, उसी नाड़ी में प्राण ले जा सकता है।

(2) प्राणों का प्राणों में हवन

महाभारत में कहीं–कहीं पर प्राणों का प्राणों में हवन करने का विधान भी किया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं–अन्य कुछ योगीजन प्राण तथा अपान दोनों की ही गति को रोककर प्राणों में हवन करते हैं। अर्थात् श्वास प्रश्वास को बन्द करके प्राण अपान आदि सभी प्राणों को अपने–अपने स्थानों में ही रोक देते हैं। इसलिये इसे केवल कुम्भक कहा जाता है जो पतञ्जलि के अनुसार चौथे प्रकार का प्राणायाम है।

इसी प्रसंग में कतिपय श्लोक पहले भी मन तथा इन्द्रियों के संयमपूर्वक श्वास व प्रश्वास के नियन्त्रण का विधान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– कुछ योगी सभी इन्द्रियों के कार्यों तथा सभी प्राणों के कार्यों को संयमित करके आत्मसंयमयोग रूपी अग्नि में हवन करते हैं। महाभारत के प्राचीन टीकाकार नीलकण्ठ ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखा है– कुछ विद्वान् अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटा कर शरीर के भीतर ही केन्द्रित करते हैं। इस संयम को ही भगवान् कृष्ण ने अग्नि कहा है। इस संयमाग्नि में इन्द्रियों के हवन का यही तात्पर्य है। यथा कानों द्वारा बाह्य जगत् की ध्वनि न सुनकर शरीरस्थ अनाहतनाद, घण्टानाद आदि दस नादों को हंसोपनिषद् में उल्लिखित प्रक्रिया द्वारा सुनना। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों द्वारा भी बाह्यजगत् के स्वविषयों को ग्रहण न करते हुए शरीरस्थ रूप, ज्योति, स्पर्श, स्वाद आदि ग्रहण करना ही इन्द्रियों का संयमाग्नि में हवन है। इन्द्रियों के संयम के साथ–साथ प्राण का संयम भी करना चाहिये, तभी देह, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि से परे आत्मा का ज्ञान होता है। जो साधक इन्द्रियों के विषयों यथा रूप ज्योति, नाद पर मन एकाग्र करके साधना करते हैं, वे इन्द्रिययोगी हैं। उन्होंने इन्द्रियों का प्रत्याहार तो किया परन्तु इन्द्रियार्थों का नहीं, अतः उनका मन तथा प्राण नियन्त्रित नहीं होते। बुद्धियोगियों का इन्द्रिय, मन तथा ...णों का भी उपसंहार हो जाता है। इसी प्रकार विषयों का इन्द्रियों में इन्द्रियों का मन में तथा मन का बुद्धि में विलय होने के पश्चात् आत्मज्ञान होने पर बुद्धि भी आत्मा में लीन हो जाती है। इस प्रकार योग ...धना करने वाले साधकों को साधना की उत्कृष्टतानुसार विविध गतियां प्राप्त होती हैं। वायवी संहिता के अनुसार इन्द्रियचिन्तक योगसाधक दस मन्वन्तरों तक अपनी स्थिति में लीन रहते हैं।

पंचमहाभूतों के चिन्तक (पृथ्वी आदि की धारणा करने वाले) सौ मन्वन्तर पर्यन्त, अहङ्कार चिन्तक एक सहस्त्र मन्वन्तरपर्यन्त, तथा अव्यक्तप्रकृति के चिन्तक दस हजार मन्वन्तरपर्यन्त अपनी स्थिति में लीन रहते हैं। परन्तु निर्गुण पुरूष तत्व को प्राप्त करने के पश्चात् कालसंख्या नहीं रहती, मोक्ष हो जाता है।

गीता में इन्द्रियों का प्राणों में संयम पूर्वक पाँचों प्राणवायुओं का अपने-अपने स्थानों में अवरोध ही प्राण में प्राणों का हवन कहा गया है। इसी प्रकार का प्राणायाम भूरिश्रवा ने रणभूमि में किया था। अर्जुन ने प्रत्यक्षत: भूरिश्रवा से युद्ध न करते हुए भी भूरिश्रवा की दाहिनी भुजा उस समय काट डाली, जब वह सात्यकि से युद्ध कर रहा था। बिना पूर्व आह्वान के इस प्रकार अर्जुन द्वारा भुजा काट डालने पर, इस अनीतिपूर्ण युद्ध से खिन्न होकर वह युद्धभूमि में ही आमरण अनशन व्रत लेकर बैठ गया था। उसने ब्रह्मलोक में जाने की इच्छा से प्राणायाम के द्वारा प्राणों का प्राणा में ही होम दिया । भगवान शिव को भी प्राणापान का अवरोध क... ...लै तथा प्राणभग्न इसी अर्थ में कहा है।

भगवान कृष्ण ने मृत्यु के समय प्राणायाम पूर्वक इन्द्रियों को रोककर मन को हृदय भ्रुकुटिमध्य व मूर्धा में स्थापित करके प्राण त्यागने वाले का परमगति का अधिकारी बताया है। वे कहते हैं-

सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर (इन्द्रियसंयम करके), मन को हृदयदेश में स्थिर करके, उस निश्चल मन द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके जो ॐ का जप करता है, तथा उसके अर्थस्वरूप परब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर त्यागता है, वह परमगति प्राप्त करता है। उसी प्रसंग में श्रीकृष्ण पुन: कहते हैं- जो भगवान का स्मरण करता है तथा मृतयुकाल में भी योगबल से भ्रुकुटि के मध्य में प्राणों को भली प्रकार स्थापित करता है, वह दिव्यस्वरूप परम पुरूष को प्राप्त होता हैं।

शान्तिपर्व में मन्त्रजप करने वाले ब्राह्मण तथा महाराज इक्ष्वाकु की कथा में भी प्राणों को क्रमशः भ्रुकुटिमध्य तथा मूर्धा में स्थापित करने का वर्णन किया गया है। एक बार मन्त्रसाधक ब्राह्मण तथा महाराज इक्ष्वाकु दोनों ने निश्चय किया कि ब्राह्मण के मन्त्रजप का फल, इक्ष्वाकु राजा तथा उसमें आधा-आधा बँट जाये। उसके फलस्वरूप इन दोनों ही महानुभावों को ऊर्ध्वगति प्राप्त हुई। इसी प्रसंग में भीष्म पितामह ने कहा-उन दोनों ने एक ही साथ अपने मन को विषयों से हटा लिया।

तत्पश्चात पंचप्राणों को हृदय में स्थापित किया। फिर मन को प्राण तथा अपान के साथ मिला दिया। भौंहों के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए मन सहित प्राण अपान को दोनों भौंहों के बीच स्थिर किया। इस प्रकार मन को जीतकर दृष्टि को एकाग्र करके उन दोनों ने प्राणसहित मन को मूर्धा में स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् वे दोनों समाधिस्थ हो गये। तभी महात्मा ब्राह्मण के तालुदेश का भेदन करके एक ज्योतिर्मयी विशाल ज्वाला निकली। इस कथा से स्पष्ट होता है कि प्राणों को सर्वप्रथम भ्रूमध्य में धारणा करने के पश्चात ही मूर्धा में स्थापित

करना चाहिये।

भीष्मपितामह की मृत्यु का प्रसंग अतिरोचक तथा प्राणायाम की इस प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। मृत्यु के समय भीष्म पितामह मन सहित प्राणवायुओं को भिन्न-भिन्न धारणाओं में स्थापित करने लगे। इस प्रकार यौगिक क्रियाओं द्वारा रोके गये प्राण क्रमशः ऊपर चढ़ने लगे। जिस-जिस अंग को त्याग कर उनके प्राण ऊपर उठते थे, उसी अंग के बाण स्वतः ही निकल जाते थे तथा घाव भर जाते थे। इस प्रकार प्राणशक्ति न होने के पश्चात् भीष्मपितामह का शरीर बाणरहित हो गया। उन्होंने देह के सभी द्वारों को बन्द करके, प्राणों को सब ओर से रोक लिया था। अतः वह उनका मस्तक फोड़कर आकाश में चला गया। उनके ब्रह्मरन्ध्र से निकल कर प्राण बड़ी भारी उल्का की भाँति आकाश में उड़ा व अन्तर्ध्यान हो गया।

❑❑❑

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह बलिया, उ0प्र0

श्री रामचन्द्र ने जिस दिन, रावण का किया संहार,
उसी दिन धरि नर तन आये, मेरे प्राणाधार।
1-कौशल्या है धरती माता, दशरथ देवीराम है,
अयोध्या ईश नगरी तो, अलुपुर गुरुधाम है,
दोनों ने ही योग साधन का, जग में किया विस्तार,
उसी दिन धरि नर———
2-योगेश्वर प्रभुराम लाल से, मोहन दीक्षा पाये,
चन्द्रवदन धोती कुर्ता में, योग का अलख जगाये,
शरण में आये शान्ति पाये, कितने लाख हजार
उसी दिन धरि नर———
3-नैतिकता के पीछे जो भी, प्रभु को याद करते है,
सच है कि वो गुरु कृपा से, दूर सदा रहते है,
निश्चल भक्ति भाव से देते, मूल मंत्र का सार,
उसी दिन धरि नर———
4- याद करोगे दया करेंगे, हैं प्रभु का ये संकल्प,
परमानन्द के दाता है, कोई उनका नही विकल्प,
राजेश भवर की नैया को, सद्गुरु करते पार।
उसी दिन धरि नर———

परमपुण्य हों अपने तब ही, सद्गुरुदेव मिला करते हैं।

द्वारका प्रसाद शर्मा लखनऊ

परमपुण्य हों अपने तब ही, सद्गुरुदेव मिला करते हैं।
पथ से भ्रष्ट हुए मनुजों को, अपनी शरण लिया करते हैं।।
अज्ञान-तिमिर से दृष्टिहीन को, ज्ञानालोक दिया करते हैं।
ज्योतिर्मय वे निजालोक से, दुर्गम सुगम किया करते हैं।।
पुण्योदय जब हुए हमारे, सद्गुरुदेव तभी मिल पाये।
संस्कारवान् सत्पात्र व्यक्ति ही, श्री चरणों ने अपनाये।।
जिन-जिन की संस्कार प्रबलता, जितनी तीव्र रही चरणों में।
उन संस्कारों संग वे आये, शरणागतवत्सल शरणों में।।
इसीलिये कुछ तीव्र वेग से, कुछ आये थे शनैश्शनैः।
जहाँ जहाँ श्री गुरुपद सौरभ, मिली जिन्हें धाये तब ही।।
आज यद्यपि हैं नहीं मध्य में, भौतिक देह धरे श्री गुरुवर।
बसी हमारे स्मृति पटलों पर, उन संग बीते क्षणक्षण मनहर।।
हमने उनके उपदेशों को, केवल सुना नहीं आचारा।
केवल वर्तमान सुख को ही, जीवन लक्ष्य किया निर्धारा।।
उनके योग तपोमय जीवन, को भी माना नहीं सहारा।
श्रीमुख द्वारा दिया मंत्र भी, निजजीवन में नहीं उचारा।।
क्या यह नहीं अवज्ञा उनकी, क्षम्य नहीं अपराध हमारा।
पुनरपि अब ही चेत जाय हम, जीवन व्यर्थ न जाये सारा।।
सद्गुरु सत्ता सूक्ष्म रूप में, कण कण में है व्याप्त सदा ही।
मन की जागृति केवल निज की, अन्तर्मुख कर भर देगी सुख ही।।
श्री गुरुवर के सूक्ष्म रूप से, यही कामना रहे हमारी।
कृपासिन्धु वे कृपाबिन्दु दें, मनोभाव दिक् दे दें न्यारी।।

हिन्दी भाषा से संस्कृत में पद्यान्तरण

कर्मांशये पुण्यसमुच्चये नृणाम्, सान्निध्यमायाति तदैव सद्गुरोः।
पश्चात् सुभ्रष्टान् मनुजान् समागतान्, शरणं स्वकीयं प्रददाति सद्गुरुः।।
अज्ञान ध्वान्तेन विलुप्तनेत्रान्, स्वकीय ज्ञानेन प्रकाशयन्ति।
ज्योतिर्मयो यो निजज्योतिषैव, दुर्गाति दुर्गं सुगमं करोति।।

यावद्धि पुण्यानि बभूवुरये, ईशाय तावद् सद्गुरुरूपेव सद्यः।
सद्भाजना ये च नराः सुसंस्कृताः, ते ते भिरे सन्निधिमेव सद्गुरोः।।
याहक्प्रमाणाः प्रबला जनानाम्, भावा बभूवुरति तीव्र वेगाः।
त एव संस्कार युताः समायनुः, शरणं शरणागतस्य तदैव काले।।
केलिज्जवेनाथ ततश्च केचित्, शनैश्शनैस्तत्र समागताः स्म।
सतोऽपि यै श्रीपदपद्म सौरभ, घ्रातुं प्रभावन्त इवागतास्ते।।
वपुः पार्थिवं यद्यपि नास्ति श्रीगुरोः, मध्येऽस्मदीये निजबन्धुवरणैः।
तथापि तेषां स्मृतयो वसन्ति, मनस्सु नः सन्निधयो तथावत्।।
श्रुतं केवलं यद् गुरुणोपदिष्टं, न व्याहृतं सन्निजजीवनेऽस्यकम्।
मत्वा सुखं केवलं मेव कालजं, स्वजन्म लक्ष्यं मनसा स्थिरीकृतम्।।
तज्जीवनं योगमय तपोमयं, विलोक्य नैवाश्रयणं गताः स्म।
विनिर्गतं श्रीमुखतश्च मंत्रं, स्वजीवने नैव तथानुचरितम्।।
किमेषाऽस्त्यवज्ञा न हि सद्गुरूणां, क्षम्योऽपि नास्त्येव कृतापराधः।
एतावतेनाप्यलमस्ति चेद्गतं, व्यशेमहि स्वोन्नयने यथायुः।।
विराजते स्वीय सुसूक्ष्मरूपा सत्ता गुरोर्वर्यापृताऽप्योर्मध्ये।
सञ्चेतना त्वन्मनसस्तु केवलं, अन्तर्मुखीना विभरिष्यते सुखम्।।
याचे कृपां सूक्ष्मगताय प्रभवे, इत्थन्मात्रिका कामना वर्तते मे।
कृपासिन्धुरसि त्वं कृपैकैकबिन्दुं, प्रदेहि शिष्याय गताय-शरणम्।।

❑❑❑

ज्ञान में शान्ति है, अज्ञान में अशान्ति है। ज्ञानी चुपचाप और शान्त रहता है, इसलिए वह मुक्त पुरुष है। अधूरे ज्ञान से मुक्ति नहीं अमरत्व नहीं है। सुने हुए एवं पढ़े हुए ज्ञान से मुक्ति नहीं है। मुक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान में है। बाहरी जगत के साथ–साथ आन्तरिक एवं कारण जगत् का भी ज्ञान अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का भी ज्ञान हो, जो प्रत्यक्ष एवं खुली आँखों से देखा हुआ हो। यदि ऐसा न हो सका तो ज्ञान अधूरा है। परमात्मा का ज्ञान ही पूर्ण सुख है, अपूर्व आनन्द है। इसे प्राप्त करने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की चराचर, जड़–चेतन वस्तुओं का ज्ञान स्वतः हो जायेगा। यही एकमात्र उपाय है मुक्ति तथा शान्ति के लिए।

समय, शक्ति एवं साधन

– अगरचन्द नाहटा –

किसी भी कार्य की सफलता का समय, शक्ति एवं साधन पर अवलम्बित है। इस साधन त्रिपुटी के बिना साध्य प्राप्ति असम्भव है। साधारणतया सभी व्यक्तियों को हम यही कहते पाते हैं कि 'क्या करें, अमुक काम करने की इच्छा तो है, पर अवकाश नहीं मिलता, अथवा शक्ति और साधनों की कमी है।' पर वास्तव में विचार करके देखा जाय तो यह बात बहुत अंशों में सही नहीं है। कार्य न हो सकने का कारण समय, शक्ति और साधनों का अभाव उतना नहीं है, जितनी तीव्र इच्छा की कमी है। उत्कट अभिलाषा और पूरी लगन हो तो समय मिल ही जायेगा, साधन भी इकट्ठे हो ही जायेंगे और शक्तिस्रोत भी फूट निकलेगा। हम जिनकी कमी महसूस कर रहे हैं, वे हम से दूर नहीं हैं; पर दूर दिखाई देने का कारण उनका दुरुपयोग है। अर्थात् हम प्राप्त साधन, शक्ति और समय का सदुपयोग करना नहीं जानते। यदि समय ही नहीं है तो कुत्सित वासनाओं एवं व्यर्थ के प्रपंचों और बुरे कामों को करने के लिए तीनों चीजें कहाँ से आ जाती हैं? इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से हमारी गलत धारणा का सहज ही पता चल जायेगा।

पग–पग पर हम अनुभव करते हैं कि जिस काम को हम सबसे अधिक आवश्यक समझते हैं, वही पहले हो जाता है। किसी भी कार्य को करने के लिए 'समय नहीं है' कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा समय अन्य उपयोगी या आवश्यक कार्य (जिसे भी हमने मान रखा हो) में लगा हुआ है। यदि हम उसे गौण करके उसके स्थान पर, जिसे करना चाहते हैं, उसको प्रधान मान लेंगे तो वही समय पहले काम से निकल कर दूसरे के लिए लग जायेगा। उदाहरणार्थ– हमारे सामने दो काम साथ ही करने के लिए उपस्थित हैं, जैसे भोजन करना और बीकानेर जाने के लिए गाड़ी पकड़ना। हमारी बुद्धि इनमें से अधिक आवश्यक कार्य पर विचार कर एक को ग्रहण करेगी। मान लीजिये, हमें यह अनुभव हुआ कि बीकानेर जाना ज्यादा जरूरी है और भोजन करने में समय देने पर गाड़ी नहीं मिलेगी, तो हम भूखे ही रहकर समय पर स्टेशन पहुँचने के लिए तैयार हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि हमें भोजन करना आवश्यक प्रतीत हुआ तो झट से भोजन करने बैठ जायेंगे, चाहे समय पर स्टेशन न पहुँचने पर गाड़ी छूट ही क्यों न जाय। यही बात अन्य सभी कार्यों के विषय में समझनी चाहिये। इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि मौखिक रूप में चाहे हम किसी एक कार्य को अधिक आवश्यक बताते हुए दूसरे के लिए समयाभाव कह दें, पर वास्तव में अनुभव यही होगा कि उसके लिए समय न मिलने का प्रधान कारण यह है कि उससे अधिक दूसरे कार्य को आवश्यक मानकर उसके लिए हमने अपना समय दे रखा है। समय तो है, उतना है ही। उसे किस काम में लगाना है, किस में नहीं,

यह हमारी मनोवृत्ति या विचार पर निर्भर है।

अपने समग्र जीवन काल पर जरा गहराई से विचार करें तो पता चलेगा कि समय तो हमारे पास बहुत है, किन्तु हम उसका ठीक उपयोग नहीं कर पाते। मान लीजिये, हमारी आयु 50 वर्ष है। उसके दिन 18000 और उसके घंटे 432000 होते हैं। मिनट बनाइये तो दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार होंगे। अब प्रत्येक कार्य के लिए कितना समय चाहिये, इसका हिसाब लगाइये। आपको यह स्पष्ट अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा कि समय हमारे पास कम नहीं है। अतः समय की कमी का बहाना छोड़ देना ही उचित होगा।

दूसरी दृष्टि से विचार करें तो प्रतीत होगा कि व्यर्थ जाते हुए समय पर कड़ी निगरानी रखना आवश्यक है। जिन कामों में जितना समय लग रहा है, उससे कम समय में वह हो सकता है या नहीं? सोचिये और जितने भी कम समय में वह हो सके कर डालने का प्रयत्न कीजिये। इससे आपको बहुत बड़ी सफलता मिलेगी। मान लीजिये आप छः घंटे नींद लेते हैं, आधा घंटा में खाते हैं तथा चौथाई घंटे में स्नान करते है। इसी प्रकार से अन्य काम भी करते हैं। अब आप प्रयत्न कीजिये कि नींद में आधा घंटे की बचत, खाने–स्नान करने में 5–4 मिनट की बचत हो। इसी तरह जिन सैकड़ों कामों में, बातों में, आपका सारा समय लग रहा है, प्रत्येक से यथासम्भव कुछ–कुछ बचत कीजिये तो बहुत से समय की बचत करके आप उसे उस अच्छे काम में लगा सकेंगे, जिसे करने के लिए आपको समय ही नहीं मिल रहा था।

विचार करने पर बहुत से कार्य तो आपको 'अनावश्यक' प्रतीत होने लगेंगे, क्योंकि जब अमुक व्यक्ति का अमुक काम न करने पर भी काम चल जाता है तो आपका क्यों नहीं चलेगा? आप जो वैसा मान रहे थे, वह आपकी भ्रान्त धारणा का ही परिणाम नजर आयेगा। आप स्वयं अन्य जरूरी काम उपस्थित होने पर उसे बिना किये काम चला लेते हैं, तब उस समय भी चल सकता है। इस तरह जिनके न करने या कम करने से अधिक असुविधा उपस्थित न हो, उन्हें और उसके बदले कार्यक्रम में अन्य कुछ कार्यों को नोट कर लीजिये। इसी प्रकार बुरी आदतों, कार्यों व्यर्थ की बातें बंद करने में जुट जाइये। थोड़े ही समय में आपके समय की कमी का प्रश्न हल हो जायेगा।

अब साधनों को लीजिये। विश्व में साधन सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। पग–पग पर साधनों का ढेर लगा हुआ है, पर अपनी अज्ञानतावश हम उनसे लाभ नहीं उठा रहे हैं। जिसे काम करना है वह खोज में लग जायेगा और इधर–उधर साधनों को खोज निकालेगा और जुटा लेगा। आज यदि कम साधन मिलें तो कोई बात नहीं, प्रयत्न चालू रखने पर कल और मिल जायेंगे। कार्य करने वालों को साधन नहीं मिलेंगे, इस बात को आप मन से हटा दीजिये। विश्वास को बढ़ाइये, साधन मिलाकर रहेंगे। बहुत से मनुष्य 'इतनी सामग्री जुट जाये, तभी काम शुरू करेंगे' यह निश्चय कर बैठते हैं, शक्ति को नहीं लगाते। अतः साधन पूर्ण नहीं होते और कार्य हो ही नहीं पाता। मेरी राय में जितने साधन प्राप्त हों उन्हीं के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दीजिये। आपके पास सौ रुपये की पूँजी है तो उसी अनुरूप कार्य प्रारम्भ कर दीजिये। हजार के लिए बैठे

न रहिये। काम करते रहेंगे, सफलता मिलती रहेगी। साधन जुटते रहेंगे। सच्ची लगन है तो सफलता अवश्यंभावी है। हताश मत होइये, घबराकर काम मत छोड़िये, प्रयत्न करते रहिये। पूरे न सही, जितने भी साधनों से काम प्रारम्भ करेंगे, उतना फल तो कहीं नहीं जायेगा। अन्यथा अधिक के पीछे थोड़ा भी खो बैठेंगे और इसके लिए आपको जीवन भर पश्चाताप करना पड़ेगा।

कुछ साधन बने बनाये नहीं होते, तैयार करने पड़ते हैं और उन्हें हम उपेक्षावश खो बैठते हैं। कुछ का उपयोग नहीं कर पाते, कुछ को पहचानते भी नहीं। जहाँ–जहाँ जो भी गलती हो, सुधारिये। सच्चे खोजी के लिये साधन दुर्लभ नहीं है।

सच तो यह है कि समय की भाँति साधनों का भी हम बहुत दुरुपयोग कर रहे हैं। मनीषियों का कहना है कि जो साधन पाप के हैं, वे ही धर्म के भी बन सकते हैं। साधनों का अच्छे या बुरे रूप में उपयोग बहुत कुछ हमारी विचारधारा पर निर्भर है। धन को ही लीजिये। इसका सदुपयोग किया जाय तो बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं और भोग–विलास एवं दूसरों को कष्ट देने के लिए धन लगायें तो उससे बहुत अनिष्ट हो सकता है। अतः साधनों का सदुपयोग करने की कला भी ध्यानपूर्वक सीखनी आवश्यक है। गुण और दोष हर चीज में मिलेंगे हममें गुण ग्रहण की दृष्टि होगी तो उसकी अच्छाइयों से लाभ उठायेंगे। दोषमयी दृष्टि होगी तो दोष के भागी बन जायेंगे। वास्तव में साधन अपने आप में अच्छे–बुरे कुछ भी नहीं हैं, हम उनका जैसे उपयोग करना चाहें कर सकते हैं।

एक ही वस्तु को प्राप्त कर एक सुखी होता है और एक दुखी। दूसरों की बात जाने दीजिये। अपने जीवन में ही कभी किसी चीज को प्राप्त कर हम आनन्द में फूले नहीं समाते और परिस्थितिभिन्नता से वही वस्तु हमें अन्य समय पर जहर–सी लगने लगती है। अतः साधनों के सदुपयोग के सम्बन्ध में विवेक से काम लेना चाहिये। एक ही साधन पर अड़े न रहकर अपना काम दूसरे से निकल सकता हो तो उससे लाभ उठाने में चूकना नहीं चाहिये। एकान्त आग्रह न रखकर अनेकान्त दृष्टि से काम लेना चाहिये।

इसी प्रकार शक्ति पर भी विचार कीजिये। वास्तव में शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती। समय और साधन तो बाह्य साधन हैं, पर शक्ति सबका मूल कारण है। उसका अक्षय भण्डार तो हमारे अंदर भरा पड़ा है, पर उपेक्षावश हम उसे भूल बैठे हैं, वह अंदर दबी पड़ी है। अतः साधनों के द्वारा उसका विकास करना है, उसे प्रकाश में लाना है। उसकी कमी का अनुभव भी उस शक्ति को अन्य कामों में लगे रहने के कारण ही है। वास्तव में हमने अपनी शक्ति विविध कामों में बिखेर रखी है। उसे बटोरकर संचय करने की परमावश्यकता है। अनावश्यक एवं बुरे कार्यों में शक्ति का जो अपव्यय हो रहा है, उसे मिटाने के लिए मिल जाना पड़ेगा और आवश्यक कार्य में लगाकर अभ्यास के बल पर उसका विकास करना होगा। आत्म विकास एवं साहस की अभिवृद्धि करनी होगी। सुप्तप्राय एवं सुप्त चेतना को जाग्रत करना होगा।

संक्षेप में कहने का तात्पर्य यही है कि शक्ति संचय कीजिये, प्राप्त साधनों के अनुसार ही आगे बढ़िये, समय को व्यर्थ खोने से बचाइये, सफलता आपकी मुट्ठी में है।

वर्तमान में रहो

दृष्टिकेतु सिंह 'पुन्डीर' (अलीगढ़)

तंत्र चार सीलों, चार मुद्राओं के विषय में बात करता है। अंतिम शक्ति को प्राप्त करने के लिए, एक व्यक्ति को चार दरवाजों से होकर गुजरना पड़ता है। उसे चार ताले खोलने पड़ते हैं। वे चार ताले चार मुद्राऐं कही जाती है।

1. **कर्म मुद्रा :–** प्रथम मुद्रा कर्म मुद्रा है। यह सबसे बाहरी दरवाजा है। आपके अस्तित्व की परिधि है। कर्म का अर्थ क्रिया है– यह आपके अस्तित्व का मुख्य बाहरी भाग है। जो भी आप करते हैं आपकी परिधि है आप किसी को घृणा करते है या मार देते है। आप किसी को प्यार करते है या किसी की रक्षा करते हो। आपके अस्तित्व का कर्म ही सबसे बाहरी भाग है। जब आप अपने कर्म में पूर्ण होते है तो प्रथम सील खुल जाती है। जो भी काम करें पूर्ण रूप से करें और तुम्हे पूर्ण आनंद मिलेगा, कुछ मंत्र दोहराने से नहीं लेकिन इसे पूर्ण रूप से करने में। यदि आप क्रुद्ध हैं तो पूर्ण रूप से क्रुद्ध होइए, और अपने क्रोध से पूर्ण रूप से सतर्क होइये, क्रोध एक दिन गायब हो जायेगा। आपने इसे समझ लिया है। यह सब हटाया जा सकता है। कोई भी चीज जिसे समझ लिया जाता है। आसानी से हटाई जा सकती है। केवल बिना समझी हुई चीजे हमारे चारों ओर लटकी रहती है।

"याद रखिए। तंत्र वैज्ञानिक है। तंत्र यह नहीं कहता कि मंत्र को दोहराइये। यह कहता है, अपने कार्य मे सजग होइए।"

2. **ज्ञान मुद्रा :–** द्वितीय सील ज्ञान मुद्रा है पहली से थोड़ी गहरी और भीतरी जो ज्ञान की तरह से है। कर्म सबसे बाहरी चीज है ज्ञान थोड़ा सा गहरा है। मैं क्या कर रहा हूँ आप इसे देख सकते हैं। और नहीं जान सकते हैं। जानना कुछ गहरा भीतरी भाग है। अब जानना शुरू के लिए। आप वास्तव में क्या जानते है। और चीजो मे विश्वास करना बन्द कर दीजिए जिन्हे आप बिलकुल नहीं जानते है। कोई तुम्हे पूछेता है "क्या एक ईश्वर है?" और आप कहते हो "हाँ, ईश्वर है।" क्या आप वास्तव में जानते है? यदि आप नही जानते तो कृपया मत कहिए कि मैं जानता हूं। कहिए मैं नहीं जानता हूं। यदि आप ईमानदार है और आप केवल कहते है जो आप जानते है और आप केवल विश्वास करते हैं। आप जानते तो दूसरा ताला खुल जायेगा। झूठा ज्ञान–सच्चे ज्ञान का दुश्मन है। और तमाम विश्वास झूठा ज्ञान है, आप साधारण रूप से उसमे विश्वास करते हो।

100 चीजों में से आप 98 चीजों से भार मुक्त हो जाओगे। केवल कुछ चीजे रहेंगी जिन्हे आप वास्तव में जानते हो। आप बड़ी स्वतंत्रता महसूस करोगे। आप का सिर ज्यादा भारी नहीं हो ज्ञान और उस स्वतंत्रता से वजन रहित द्वितीय मुद्रा में प्रवेश कर जाओगे।

3. साम्य मुद्रा :– तृतीय मुद्रा साम्य मुद्रा कहलाती है। साम्य का अर्थ, 'समय' होता है। ज्ञान गायब हो गया है। आप केवल 'अब' में है, केवल सबसे शुद्ध समय बचा है। देखिए, इस पर चिन्तन कीजिए कोई ज्ञान नहीं है। ज्ञान केवल अतीत के बारे में है। केवल इस क्षण, आप क्या जानते हो? कुछ नहीं!!! इसलिए साम्य मुद्रा इस क्षण में है।

साधारण रूप से आप सोचते हो अतीत, वर्तमान और भविष्य समय में तीन विभाजन है, यह तंत्र का ज्ञान नहीं है। तंत्र कहता है। केवल वर्तमान ही समय है। अतीत नहीं है, यह पहले ही जा चुका है। भविष्य नहीं है। यह अभी नहीं आया है। केवल 'वर्तमान' है। वर्तमान में होना वास्तव में 'समय' में होना है। अन्यथा आप या तो स्मृति में है या आप सपनों में है। दोनों ही भ्रम जाल है। इसलिए तीसरी सील 'वर्तमान' में होने पर टूट जाती है।

4. महा मुद्रा :– चौथी सील महा मुद्रा है। सबसे महान सबसे भीतरी संकेत अंतरिक्ष की तरह। आप केवल सबसे शुद्ध अंतरिक्ष बचा है। कर्म, ज्ञान, समय और अंतरिक्ष ये चार सीलें (मुहरें) हैं। अंतरिक्ष आपका सबसे भीतरी तत्व है। पहिया की धुरी है। अथवा तूफान का केन्द्र है। आपके भीतरी खालीपन, अ[illegible]श, आसमान है। ये चार सीलें है जिन्हें तोड़ा जाना है।

□□□

शोक–संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित किया जा रहा है कि पूज्य गुरुदेव के अनन्य शिष्य इलाहाबाद निवासी श्री विनय मालवीय की धर्मपत्नी श्रीमती इन्दरानी मालवीय का गत 10 सितम्बर 2007 को स्वर्गवास हो गया। वेदना के इन क्षणों में समस्त सिद्धयोग परिवार उनके निधन से हुई अपूर्णनीय क्षति से शोक संतप्त है और श्री गुरुदेव भगवान से दिवंगत आत्मा को अपनी अभय गोद प्रदान करने की प्रार्थना करता है। इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति मालवीय परिवार को प्रभु प्रदान करें। 'सिद्धयोग' अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

– सम्पादक

तत्क्षण उसको फल देते

वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

परम पुनीत शुभ अवसर यह पाकर वसुधा धन्य हुई।
आषाढ़ मास गुरु पूर्णिमा की सद्गुरु चरणों में अनुरक्त हुई।।
ऋतुराज महोत्सव मना रहे, प्रभु चरणों का प्रक्षालन कर।
मन्द–मन्द समीर मुस्कुरा रहे, प्रभु चरणों में चॅवर डुलाकर।।
रवि ने छोडी प्रथम किरण योगेश्वर अविनाशी पर।
मृदुल तरंगें गूँज रही अखिलेश्वर सुखरासी पर।।
ज्ञान की गंगा में निर्मल होकर बहुतों ने शीश झुकाया था।
दनुज–मनुज की गिनती क्या, देवों ने पुष्प चढाया था।।
कोयल, मयूर सब निर्भय होकर गुरु चरणों में शीश झुकाते थे।
प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर अपना–अपना फर्ज निभाते थे।।
बज रही सुरीली मधुर ध्वनि प्रभु भक्तों की वाणी से।
जय–जय गुरुदेव परस्पर आपस में कह बोल रहे।
गुरुपूर्णिमा की शुभ मंगल पर जयकार सभी लगा रहे।।
अपने – अपने बारी की प्रतीक्षा रत में खड़े रहें।
आ गई उमंग प्रभु भक्तों में सद्गुरु चरणों के पूजन की।
थाल सजाकर पुष्प लिए सब हर्षित थे नर–नारी।।
हो विराट अव्यक्त प्रभु जी, सबकी करुण पुकार सुन लेते हो।
जैसी जिसकी श्रद्धा होती, तत्क्षण उसको फल देते हो।।
भजनानन्दी भजन गा रहे श्रोता सब उत्सुक थे सुनने को।
आनन्द हिलोरे मार रही सब बेसुध थे कुछ पाने को।
परम पुनीत शुभ अवसर यह पाकर वसुधा धन्य हुई।
आषाढ़ मास की गुरु पूर्णिमा सद्गुरु चरणों में अनुरक्त हुई।।

□□□

वेदों में ईश्वर-भक्ति

– श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह –

कुछ लोगों का कहना है कि वेदों में ईश्वर भक्ति का समावेश नहीं, परन्तु विचार करने से पता लगता है कि वेदों में ईश्वर भक्ति के विषय में जो मन्त्र विद्यमान हैं, वे इतने सारगर्भित तथा रस से भरे पड़े हैं कि उनसे बढ़कर भक्ति का सोपान अन्यत्र मिलना कठिन है। ईश्वर भक्ति के सुगन्धित पुष्पवेद के प्रत्येक मन्त्र में विराजमान हैं, जो अपने प्राण की सुगन्ध से स्वाध्यायशील व्यक्तियों के हृदयों को सुवासित कर देते हैं। वेद में एक मन्त्र आता है –

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु0 25/12)

'जिसकी महिमा का गान हिम से ढके हुए पहाड़ कर रहे हैं, जिसकी भक्ति का राग समुद्र अपनी सहायक नदियों के साथ सुना रहा है और ये विशाल दिशाएँ जिसकी बाहुओं के सदृश हैं, उस आनन्दस्वरूप प्रभु को मेरा नमस्कार है।'

प्रभु की महिमा महान् है। अणु-अणु में उसकी सत्ता विद्यमान है। ये सूर्य-चन्द्र, तारे तथा संसार के सारे पदार्थ उसकी सर्वव्यापकता के साक्षी हैं। उषा की लालिमा जब चतुर्दिक् छा जाती है, भाँति-भाँति के पक्षी अपने विविध कलरवों से उसी की भक्ति के गीत गाते हैं। पहाड़ी झरनों में उसी का संगीत है। जिस प्रकार समाधि की अवस्था में एक योगी बिलकुल निश्चेष्ट होकर ईश्वर के ध्यान में लीन हो जाता है, उसी प्रकार ये ऊँचे-ऊँचे पहाड़ अपने सिरों को हिम की सफेद चादर से ढँककर ध्यानावस्थित हो अपने निर्माता की भक्ति में मौन-भाव से खड़े हैं।

कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि भक्ति के आवेश में ईश्वर-भक्त की आँखों से प्रेम के अश्रु छलक पड़ते हैं। उसी प्रकार पर्वतों के अंदर से जो नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं, वे ऐसी लगती हैं मानो उन पर्वतों के हृदय से जलधाराएँ भक्ति के रूप में निकल पड़ी हैं। जैसे ईश्वर-भक्त के हृदय में लहराते हुए परमात्म-प्रेम के अगाध सिन्धु में नाना प्रकार की तरंगें उठती हैं, उसी प्रकार आकर्षण-शक्ति के द्वारा जिसे प्रभु ने समुद्र के हृदय में डाल रखा है, उस प्रेम की ज्वारभाटा के रूप में विशाल लहरें समुद्र में पैदा होती हैं। यह प्रेम समुद्र के हृदय में किसने पैदा किया? समुद्र और चन्द्रमा के बीच जो आकर्षण-शक्ति है, वह कहाँ से आयी? किस महान् शक्ति की प्रेरणा से पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा के पूर्ण विकसित चेहरे को देखकर समुद्र अपने प्राणप्रिय चन्द्रदेव से मिलने के लिये बाँसों उछलता है? ठीक इसी प्रकार जब ईश्वर-भक्त परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है, तब उसका हृदय भी गद्गद होकर उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। यह सच है कि प्रकृति देवी धानी साड़ी पहन अपने पतिदेव परमात्मा

की भक्ति में दिन–रात लगी रहती है। एक वाटिका के खिले फूल अपनी आकर्षक सुरभि के साथ मूक स्वर से अपने निर्माता का स्तवन करते रहते हैं। सूर्य की प्रचण्डता, चन्द्र की शीतल ज्योत्स्ना, ताराओं का झिलमिल प्रकाश, अरोरा बोरियालिसका उत्तरी ध्रुव में प्रकाशित होना तथा आस्ट्रेलिस का दक्षिणी ध्रुव में उदय होना, हिमाच्छादित पर्वत–मालाएँ, कलकल करती हुई सरिताएँ, झरझर झरते हुए झरने मानो अपने निर्माता की भक्ति के गीत सदा गाते रहते हैं।

वेदभगवान हमें आदेश देते हैं कि वह ईश्वर जिसकी महिमा का वर्णन ये सब पदार्थ कर रहे हैं, जिसकी भक्ति का राग यह सकल ब्रह्माण्ड गा रहा है– हे मनुष्य! यदि दुःखों से छूटना चाहता है तो तू भी उसी की भक्ति कर। इसके अतिरिक्त दुःखों से छूटने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। ❑❑❑

सत्य ही जीवन है

निर्मला चन्देल (उदयपुर)

जीवन एक अमूल्य रत्न है। ईश्वर की अनुभूति, शक्ति की दाता है। सत्य ही स्वयं के ज्ञान की आहुति है। एक अत्यन्त श्रद्धालु एवं सत्य वक्ता अपने द्वार के समीप आसन पर बैठे–बैठे प्रभु भक्ति के स्वर उच्चारित कर रहे थे कि उन्हें परिछाया के रूप में एक नारी का स्वरूप दृष्टिगत हुआ तो उन्होंने उसे रोक कर पूछा ''देवी ! आप कौन हैं? और कहाँ जा रही हैं?'' प्रत्युत्तर में उसने कहा ''मैं महालक्ष्मी हूँ और अब यहाँ से जा रही हूँ।'' श्रद्धालु व्यक्ति ने कहा कि ''अच्छा है, जाइये।'' भक्तिगीत की कुछ पंक्तियाँ गाते हुए पुनः एक अन्य नारी की परिछाया दिखाई दी। उन्होंने पुनः प्रश्न किया –'आप कौन है, देवि और कहाँ प्रस्थान कर रही हैं?' महिला ने उत्तर दिया कि 'मैं कीर्ति हूँ और अब यहाँ से जा रही हूँ।' प्रति उत्तर में महाशय जी ने दीर्घ श्वांस छोड़ते हुए कहा – अच्छा है, पधारिये।' तत्काल ही उन्हें किसी पुरुष की प्रतिछाया जाती हुई दृष्टिगत हुई। उसे रोकते हुए उन्होंने पूछा, आप कौन हैं? और क्यों जा रहे हैं? उसने कहा कि मैं सत्य हूँ और मैं भी अब यहाँ से जा रहा हूँ। श्रद्धालु व्यक्ति के जीवन का पवित्र यश सत्य ही है, अतः उन्होंने तुरन्त उनके चरण पकड़ कर विनती करना आरम्भ कर दिया कि सत्य एक वरदान है, साहस, संकल्प, श्रम, विद्या का भव्य जागरण है। परमात्मा की भक्ति का आधार है, अतः आप हमें विसर्जित करके मत जाइये। सत्य, देव पुरुष ने, अत्यन्त सात्विक विनय करने पर स्वयं के न जाने का आश्वासन प्रदान किया। तत्पश्चात् सत्य वक्ता श्रद्धालु ने देखा कि महालक्ष्मी एवं कीर्ति दोनों देवियाँ पुनः आ गयीं। उन्होंने पूछा आप क्यों, कैसे वापस लौट आईं? दोनों देवियों ने उत्तर दिया कि हम उस स्थान से दूर नहीं जा सकतीं जहाँ सत्यदेव रहते हैं। सत्य जीवन का आधार है। एक मानव आत्मा का भव्य जागरण है। जीवन का सतत् सृजन है एवं दिव्य संधान है। नियति नहीं, निर्माण है। ❑❑❑

आश्रम समाचार*

गोरखपुर में योग सम्मेलन

गोरखपुर, महायोगी गोरखनाथ जी की तपो भूमि रही है। आज यहाँ श्री गोरक्षनाथ जी महाराज का बहुत दिव्य मन्दिर बना हुआ है। इसी मन्दिर के माध्यम से आज भी बहुत से कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। वर्तमान युग में भी सिद्धयोगी गम्भीर नाथ जैसे सिद्ध योगी हुये है जिनके तपोतेज से यह भूमि पवित्र हो रही है। उन्हीं के शिष्य के रूप में ब्रह्मलीन युग पुरुष महन्त दिग्विजय नाथ जी हुये है। जिन्होंने अपने बहुआयामी व्यक्तित्व से सारे हिन्दू समाज के हित में बड़े-बड़े कार्य किये है। आज से 38 वर्ष पूर्व वे ब्रह्मलीन हो गये किन्तु आज भी उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को हिन्दू समाज बड़े आदर से याद करता है। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये उन्होंने अपना तन, मन, धन लगा दिया। उनके पुण्य तिथि के उपलक्ष्य में मन्दिर की ओर से सप्तदिवसीय कार्यक्रम का आयोजन बहुत वर्षों से होता चला आ रहा है। उनकी स्मृति में एक विशाल सभागार बना हुआ है, जहाँ धार्मिक व आध्यात्मिक कार्यक्रम होते रहते है। इस स्मृति भवन के उद्घाटन के अवसर पर महन्त श्री अवैद्यनाथ जी महाराज के आमन्त्रण पर गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज भी पधारे थे। दो-तीन बार अन्य वर्षों में भी गये। महन्त अवैद्यनाथ जी महाराज भी श्री सिद्धगुफा सवाई धाम दो बार पधार चुके हैं। मन्दिर की ओर से कार्यक्रम का आमन्त्रण प्रतिवर्ष आता है। इसी के अनुसार आश्रम से 4-5 वर्षों से योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज कार्यक्रम में सम्मिलित हो रहे हैं। इस वर्ष भी 23 सितम्बर से 29 सितम्बर तक का विभिन्न विषयों पर आधारित कार्यक्रम आयोजित थे। इसी में 28 ता. को योग सम्मेलन का कार्यक्रम था। इस सम्मेलन में आचार्य दासलाल जी मुख्य वक्ता के रूप में थे। उन्होंने योग के विषय में जो बातें कहीं उसका सार इस प्रकार है-मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन केवल योग से ही सम्भव है- अविद्या, अस्मिता राग-द्वेष और अभिनिवेश आदि क्लेशों का उन्मूलन करना ही योग है। योग से ही आत्मज्ञान होता है। इस प्रकार से योग ही शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिक दु:खों का निवारण सम्भव है। योग विद्या ऐसी विद्या है जिसके जान लेने पर और कुछ जानना शेष नहीं रहता। '**यस्मिन ज्ञाते यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते**' – उपनिषदों में। इस प्रकार से योगाचार्य का व्याख्यान बहुत ही मार्मिक रहा। सभी को योगी बनने की प्रेरणा दी। वर्तमान में इस गोरख पीठ के उत्तराधिकारी योगी आदित्यनाथ जी अपने बहुआयामी कार्यक्रमों से पीठ को निरन्तर उन्नति की ओर ले जा रहे है तथा सांसद होने के नाते भी पूर्वांचल के लोगों के पूर्ण हितैषी व आराध्य हैं। 29 ता. को क्षेत्र के सभी शैक्षिक, सामाजिक संगठनों के कार्यकर्त्ताओं के साथ-साथ बहुत से सन्त महात्माओं के द्वारा ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजय नाथ जी को 38 वीं पुण्य तिथि के अवसर पर श्रद्धांजलि देते हुए उनके कृतत्व, गरिमामयी व्यक्तित्व को याद किया गया। इस प्रकार से गोरखपुर मन्दिर का यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

मायाजाल : मकड़जाल

– **दिनेश शर्मा** (जरेरा, दिल्ली) –

यह संसार एक मकड़ी के जाले के समान है इस माया मोह के जाल में उलझे बिना कुछ विरले उच्चकोटि के साधक जन ही बच पाते हैं। जैसे हमारे आप सभी के प्रात: स्मरणीय परम पूजनीय दादा गुरुदेव अखिल ब्रह्मांड नायक परमयोग योगेश्वर महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज और योगीराज अनंतश्री चंद्रमोहन जी महाराज तथा इन्हीं के साथ के कई गुरुभाई जो महाप्रभु जी के अग्रणीय शिष्य रहे है ये महान विभूतियां ऐसी रही हैं कि इन्होंने खुद को भी और हजारों लाखों साधकों को योग के पथ पर चलाकर इस माया मोह के जाल से छुटकारा दिलाया और इस भवसागर को सहज में पार कराया।

यह ममता–माया–मोह का जो जाल हम अपनी सुख सुविधाओं के लिए बुनते हैं। जितना बड़ा इस जाल को हम बुनते चले जाते हैं उतने ही ज्यादा हम उलझते चले जाते हैं। मकड़ी भी अपनी सुख सुविधाओं के लिए ही अपना जाल बनाती है और उस वृहदजाल से अपनी इच्छा अनुसार बाहर निकल जाती है। क्योंकि वह जाल बुनकर जाल से बाहर निकलने में पारंगत होती है। लेकिन इंसान अपने बनाये हुए जाल में ऐसा उलझता है कि सुलझाते–सुलझाते पूरी जिंदगी गुजर जाती है और इस संघर्ष को करते–करते हम मौत के मुँह में चले जाते है। पर दोघड़ी हमें फुरसत नहीं मिलती कि जिस कार्य हेतु ये मानव शरीर हमें भगवान द्वारा दिया गया है उसका सदुपयोग करें और निष्पाप होकर प्रभु का गुण–गान करें। अपने परम पूज्य गुरुदेव जी द्वारा दिया हुआ गुरुमंत्र जाप करलें। हम अपने आप में चालाक इतना बनते हैं कि जब हमारी अंतर आत्मा हमें पुकार कर यह कहती है कि तुझे विधिपूर्वक भजन करना चाहिये तो हम लपाक से यह कह कर अंतर आत्मा की आवाज को दबा देते है कि क्या करूं काम धंधे से फुरसत ही नहीं मिलती कि जो भजन–पूजा और ध्यान कर सकूं।

किसी ने इस संसार को भवसागर कहा है, तो किसी ने इस संसार को मायामोह का मकड़जाल, तो किसी ने इसको माया मोह की झूठी मृगतृष्णा–(जैसे रेगिस्तान में प्यासा हिरन जब नजर उठाकर चारों ओर देखता है तो उसे चारों तरफ पानी ही पानी नजर आता है और जब हिरन दौड़कर पानी के पास जाना चाहता है तो पानी और दूर चला जाता है।) कहा है। लेकिन पूर्णपरब्रह्म योगयोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने गीता में इस संसार को दुखालय का नाम दिया है और यही नाम सत्य है। पूरा संसार यह जानता है कि इस नाशवान संसार में कोई किसी का नहीं है। ये रिश्ते–नाते अपने व पराये सभी झूठे हैं और पराये है। अज्ञानतावश हम परायों से सुख की आशा करते हैं और वह पूरी न होने पर दुःख की प्राप्ति होती है। इस संसार के दुखों से मानव को मुक्ति दिलाने के लिए परमात्मा गुरुदेव महाराज के रूप में मानव शरीर धारण कर अवतार लेते हैं। जीवों को ज्ञान का रास्ता बतला कर उनका अज्ञान दूर करके निश्चयपूर्वक बतलाते हैं कि यदि तू मेरी शरण में आकर मेरी आज्ञा का पालन करेगा तो मैं तुझे

सारे शरीर के सम्पूर्ण दुखो से मुक्त करके परमानंद प्रदान कर दूंगा। तथा यह चौरासी लाख योनियों का चक्कर बार–बार जन्म लेना और फिर मर जाना फिर जन्म लेना फिर मर जाना असहनीय दुख:दर्द तथा रोना धोना सभी समाप्त कर दूंगा। परन्तु यह सब तभी सम्भव है जब हमारा समर्पण गुरुदेव महाराज के प्रति पूर्ण रूप से होगा।

इसी प्रकार श्री तुलसी दास जी और भी आगे लिखते है कि भगवान ने ही खुद सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है और अपनी ही स्वरचित सृष्टि के अंदर सबसे प्रिय जो मुझे लगा है वह मानव ही तो है। "**सब ममप्रीय सब मम उपजाई सबते अधिक मनुज मोहिभाई।।**"

मानव शरीर दुर्लभ है और भगवान को सबसे ज्यादा प्रिय है। यह लगभग सभी जानते है। हम तो भगवान को प्यारे लगते है लेकिन हम भगवान से प्यार नहीं करते क्योंकि अगर हम प्यार करते, तो उनका भजन करते। हम श्री गुरुदेव भगवान के बताये हुये मार्ग पर नहीं चलते माया मोह का जाल हमें नहीं छोड़ता। और सच तो यह है कि हम ही माया मोह को नहीं छोड़ पाते लालच के वशीभूत होकर इस जाल में फंसे पड़े रहते है।

पूरा जीवन हम यूंही व्यर्थ मे बिताते जाते है। बचपन मे अज्ञान अवस्था के कारण फुरसत नहीं मिलती खेलने कूदने मे चली जाती है। तथा जवानी मे विषय विकार और परिवार के पालन पोषण से फुरसत नहीं मिलती तथा बुढ़ापा आने पर बीती बातों पर पछतावा करना तथा चिल्लाना और रोने–धोने से फुरसत नहीं मिलती क्योंकि जिनके लिए पूरी उम्र मेहनत–मजदूरी करने में खर्च कर दी अब बुढ़ापा आने पर अपने ही परिवार के लोग मेरा कहना नही मानते हमारे अपने ही हमें आँख दिखाते है। हमारी सेवा नहीं करते इस तरह धीरे–धीरे परिवार भी साथ छोड़ देता है।

अब हमारे पास बचा ही क्या है? यह शरीर जो मेरा अपना है यह भी अब धीरे–धीरे साथ छोड़ रहा है। आँखो से अब कम नजर आता है। मुह के दाँत भी एक–एक करके गिरने शुरू हो गये है। कानो से भी अब कम सुनाई देता है। खाना खाने के लिए मन तो करता है पर भूख नहीं लगती थोड़ा बहुत जो खाते हैं वह हजम नही होता पाचन क्रिया समाप्त होती जा रही है। हाथ पैरो ने काम करना बंद सा ही कर दिया है इस वजह से घुमना–फिरना बंद हो गया है। शरीर के लगभग सारे अंगो ने काम करना बंद कर दिया लेकिन ये जो मन है इसने काम करना बंद नही किया वह आज भी बिना लगाम के घोड़े की तरह दौड़ता रहता है और यही मन हमें मकड़ी के जाल मे फसाये बैठा है।

यह तो सर्व विदित है कि एक दिन रोज हमारी जिंदगी का कम होता जा रहा है और यह भी सत्य है कि काल हमें खाने के लिए मुँह खोले दोनो हाथ फैला कर खड़ा है। बस देरी है तो नम्बर की जिस समय नम्बर आ गया उसी समय काल के गाल में चले जायेंगे। असली हिसाब किताब उसी समय होगा पाप और पुण्य का हमने मानव शरीर का सदुपयोग किया है या दुरपयोग किया है। किसी सदात्मा ने कितना सत्य लिखा है–

कलिकाल कुठार लिए फिरता, तन मन पै चोट झिली न झिली।
रटिले हरि नाम अरी रसना, जाने अंत समय पै हिली न हिली।।

इसलिए हम गुरुदेव के बताये हुये रास्ते पर चलकर मुक्ति द्वार की ओर बढ़ें और अंत समय आने पर श्री गुरुदेव की अखण्ड ज्योति में लीन होने का यतन करें। हमारे गुरुदेव भगवान योगिराज, योगावतार हैं। वे परमदयालु, परम कृपालु, करुणा के सागर हैं। हम दीन–हीनों पर अवश्य दया करेंगे तथा इस जीवन के मकड़जाल से छुटकारा दिलायेंगे। ऐसी मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है।

❑❑❑

अज्ञानता से मुक्त हाओ !

आत्मा को 'रथी' समझो और शरीर को 'रथ', बुद्धि को 'सारथि' जानो और मन को 'लगाम'। विवेकी पुरुष इन्द्रियों को 'घोड़े' और विषयों को उनके 'मार्ग' तथा शरीर, इन्द्रियों और मन सहित आत्मा को 'भोक्ता' कहते हैं। जो बुद्धि रूप सारथि अविवेकी होता है, जो अपने मन रूपी लगाम को कसकर नहीं रखता, वह परमात्मा को नहीं प्राप्त होता, संसार रूपी गर्त में गिरता है। जो मनुष्य विवेक युक्त बुद्धिरूप सारथि सम्पन्न और मनरूपी लगाम को काबू में रखने वाला होता है, जिससे फिर जन्म नहीं लेता। इन्द्रियों की उपेक्षा उनके विषय परे है, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से परे आत्मा महत्तत्व है, महत्तत्व से परे अव्यक्त (मूल प्रकृति) है और अव्यक्त से परे पुरुष (परमात्मा) है। पुरुष से परे कुछ भी नहीं आता, वही परम गति है। सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ वह आत्मा प्रकाश में नहीं आता। सूक्ष्मदर्शी पुरुष अपनी तीव्र एवं सूक्ष्म बुद्धि से ही एसे देख पाते हैं। विद्वान वाणी को मन में और मन को विज्ञानमयी बुद्धि में लीन करे, इसी प्रकार बुद्धि को महत्तत्व में और महत्तत्वको शान्त आत्मा में लीन करें। यम–नियमादि साधनों से ब्रह्म और आत्मा की एकता को जानकर मनुष्य सत्स्वरूप ब्रह्म हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न करना) ये पाँच 'यम' कहलाते हैं। 'नियम' भी पाँच ही हैं– शौच (बाहर–भीतर की पवित्रता) संतोष, उत्तम तप, स्वाध्याय और ईश्वर पूजा। 'आसन' बैठने की प्रक्रिया का नाम है, उसके 'पद्मासन' आदि कई भेद हैं। प्राण वायु को जीतना 'प्राणायाम' है। इन्द्रियों का निग्रह 'प्रत्याहार' कहलाता है। एक शुभ विषय में चित्त को स्थिरतापूर्वक स्थापित करने को 'धारणा' कहते हैं। एक ही विषय में बारम्बार धारणा करने को 'ध्यान' कहते हैं। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार के अनुभव में स्थित होने को 'समाधि' कहते हैं। जैसे घड़ा फूट जाने पर घटाकाश महाकाश से अभिन्न (एक) हो जाता है, वैसे ही मुक्त जीव ब्रह्म के साथ एकीभाव को प्राप्त होता है – वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है। ज्ञान से ही जीव अपने को ब्रह्म मानता है, अन्यथा नहीं। अज्ञान और उसके कार्यों से मुक्त होने पर जीव अजर–अमर हो जाता है।

● स्वास्थ्य चर्चा

जीवन का प्रथम आधार – आहार

– शशिनाथ झा –

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' धर्म का प्रथम साधन है शरीर का नीरोग रहना। चरक में कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष – इस पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति का मूल कारण शरीर का आरोग्य रहना है। पर इस आरोग्य के अपहरणकर्ता है रोग, जो श्रेयस् का और जीवन का भी विनाश करते हैं–

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।।

(चरक० सू० 1/15-16)

कहने का तात्पर्य यह है कि स्वस्थ शरीर के द्वारा ही मनुष्य सभी प्रकार के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यों का सम्पादन कर सकता है। शरीर के अस्वस्थ रहने पर मनुष्य यदि मन से कुछ सोचता भी है तो वह कुछ कर नहीं सकता। अतएव शास्त्रकारों ने स्वास्थ्य की रक्षा के प्रयोजन को निर्दिष्ट करते हुए कहा है–

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।

अर्थात् अन्यान्य कामों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि शरीर का अभाव होने पर सब कुछ का अभाव हो जाता है।

वात,पित्त तथा कफ– इन तीनों को दोष कहा जाता है; जिस पुरुष के शरीर में ये त्रिदोष सम–अवस्था में हों, अग्नि (जठराग्नि) सम हो अर्थात् पाचनक्रिया ठीक हो, रसादि धातुओं का ठीक–ठीक निर्माण हो रहा हो, मल–मूत्रादि का विसर्जन उचितरूप से हो रहा हो और इन सबके फलस्वरूप आत्मा, इन्द्रिय एवं मन यदि प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हों तो उसे स्वस्थ कहते हैं यानी स्वस्थ व्यक्ति का यही लक्षण है–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

(सुश्रुत सू० 15/41)

मनुष्य–शरीर के तीन आधार–स्तम्भ हैं– 'त्रय उपस्तम्भा इति–आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' (चरक सू० 11/35) 1– आहार, 2–स्वप्न (उचित सोना) और 3–ब्रह्मचर्य। प्रथम आधार–आहार की शुद्धि शरीर की रक्षा में विशेष अपेक्षित है। यही कारण है कि हमारे यहाँ त्रिकालज्ञ परम ज्ञान–विज्ञानविशारद ऋषि–मुनियों, सन्त–महात्माओं ने खान–पान की, आचार–विचार की शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया; क्योंकि इससे धर्माचरण का प्रधान सम्बन्ध तो है ही, स्वास्थ्य का भी गहरा सम्बन्ध है।

विश्ववन्द्य वेद का निर्देश है कि मनुष्यों को प्रातः एवं सायं दो बार भोजन करना चाहिये।

इसके बीच में भोजन नहीं करना चाहिये। यह भोजन की विधि अग्निहोत्र के समान ही है। मल-मूत्र त्याग करने के बाद, इन्द्रियों के निर्मल तथा शरीर के हलके रहने पर, ठीक से डकार आने एवं मन के प्रसन्न रहने पर, वायु का संक्रमण ठीक से होने पर, भूख लगने के बाद, भोजन के प्रति रुचि उत्पन्न होने पर, आमाशय के ढीले पड़ जाने पर भोजन करना चाहिये; क्योंकि यही भोजन का उचित अवसर है-

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्। नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः।।
विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ। विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति।
तथान्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले।प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः।।

भोजन करने से पहले हाथ-मुँह और पैर अवश्य धोने चाहिये- **'आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत'**, क्योंकि कहा गया है कि **'आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्'** अर्थात् गीले पैर जो भोजन करता है, वह दीर्घायु होता है। भोजन कब करना चाहिये, इस पर निर्देश है कि-

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।
याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः।।

याम कहते हैं प्रहर को, यह तीन घंटे का होता है। सूर्योदय से तीन घंटेतक भोजन न करे, दो याम यानी छः घंटे से अधिक विलम्ब भी न करे। दो यामों के बीच में भोजन करने से अन्नरसका परिपाक भलीभाँति होता है। दो याम बिताकर भोजन करने पर पूर्वसंचित बल का क्षय होता है। अतः सदैव समय पर ही भोजन करना चाहिये। भोजन के समय क्या करना चाहिये, इस विषय में बताया गया है-

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः।।
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति। अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्।।

अर्थात् भोजन का सदैव आदर करे, प्रत्युत प्रशंसा करता हुआ उसे ग्रहण करे। भोजन की निन्दा कभी न करे, उसे देखकर आनन्दित हो, भाँति-भाँति से उसका गुणगान करे। क्योंकि इस प्रकार ग्रहण किया गया भोजन प्रतिदिन बल एवं पराक्रम को देता है। बिना प्रशंसा के किये गये अन्न का भोजन करना तो दोनों की क्षति करता है।

भोजन की मात्रा कितनी हो उसे बताते हुए कहा गया है-

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघून्यपि।।
गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद् विजीर्यति।।

नित्य मात्रा के अनुसार किया गया आहार जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। मात्रा का निर्धारण गुरु एवं लघु द्रव्यों के आधार पर होता है। तदनुसार गुरु पदार्थ (तेल तथा घी में तले हुए पदार्थ, दूध, मलाई, रबड़ी आदि) का सेवन भूख की मात्रा से आधा ही करना उचित है और लघु (सुपाच्य)पदार्थों का तृप्तिपर्यन्त करना चाहिये, किंतु तृप्ति से अधिक नहीं। जितनी मात्रा में भोजन सुखपूर्वक पच जाये, उतनी मात्रा में भोजन करना उचित है।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वाद आदि के लोभ से बिना प्रमाण के अज्ञानी पशुओं की भाँति भोजन करते है, वे रोगसमूह की जड़–अजीर्ण रोग से पीड़ि होते है।

भोजन करने के नियम भिषगाचार्यों ने जिस प्रकार बताये है उसे आहार–विधि कहा है–उष्ण, स्निग्ध, नियत मात्रा में, भोजन के पच जाने पर, वीर्याविरुद्ध अर्थात् जो आहार परस्पर में विरुद्ध वीर्यवाले न हों, अपने मन के अनुकूल स्थान पर, अनुकूल सामग्रियों के सहित आहार को न अधिक जल्दी, न अधिक देर से, न बोलते हुए, न हँसे हुए, अपने अगल–बगल चारों ओर भलीभाँति परीक्षणकर, आहारद्रव्य में मन लगा करके भोजन करना चाहिये।

दूसरे की जूठी कोई चीज खाना या खिलाना सर्वथा हानिकारक है। जूठी चीजों के सेवन से विचारों में विकृति आती है, बुद्धि दुर्बल हो जाती है और शरीर में बहुविध रोग उत्पन्न होते है। उदाहरणार्थ– डॉक्टर किसी संक्रामक रोग के रोगी की नब्ज देखकर अथवा उसका उपचार कर सावधानी से हाथ धोता है; क्योंकि कीटाणुओं का भय रहता है। जब छूने मात्र से कीटाणुओं का संक्रमण होता है, तब थूक लगे जूठे पदार्थों के भोजन में कीटाणुओं का भय नहीं है, यह मानना ही मन्दमति है। आजकल एक–दूसरे की जूठन शौक से खायी जाती है। 'बफे पार्टी या सिस्टम' तो पशुभोजन की भाँति सबके जूठन खाने खिलाने की ही दूषित भोजन प्रणाली है। इससे शारीरिक–मानसिक रोग बढ़ते हैं और अन्ततः पतन होता है।

बिना नहाये–धोये गंदे विचारों वाले सर्वहारा मनुष्य के अथवा कामी, क्रोधी तथा वैरभाव रखनेवाले एवं अस्वस्थ व्यक्ति के हाथ का बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिये। यदि किया गया तो उससे मन में अपवित्रता, गंदगी, काम–क्रोधादि कुत्सित विचार अथवा शत्रुता उत्पन्न होगी। अच्छी तरह नहाये–धोये शुद्ध शरीरवाले, सात्त्विक भोजी, सुप्रसन्न भाव वाले संयमी स्वस्थ सुहृद व्यक्ति के हाथ का बनाया भोजन हमें करना चाहिये। भोजन बनाने वाले मनुष्य के स्वस्थ या अस्वस्थ शारीरिक और मानसिक विचार तथा विकार का प्रभाव भोजन पर पड़ताहै या उन पदार्थों का भोजन करने वाले व्यक्ति पर भी तदनुसार ही असर होता है।

भोजन में हिंसाजनित मांस, लहसुन–प्याज आदि तामसी पदार्थों तथा पापाचार से प्राप्त भोजन के सेवन से भोजन करने वालों के सद्विचार और सद्व्यवहार नष्ट होते हैं। इससे उनमें पाप में पुण्यबुद्धि हो जाती है। फलतः मनुष्य पाप–पथिक बनकर सर्वनाश की दिशा में पदारूढ़ हो जाता है, परिणाम होता है उसका नाश, क्योंकि 'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।' अतः विधिपूर्वक भोजन करने से पहले भक्तिभाव से भगवान् को भोग लगाना चाहिये। ऐसा करने से वह प्रसाद बन जायेगा, उसकी आत्मा प्रसन्न हो जायेगी–'प्रसादस्तु प्रसन्नात्मा'। उस प्रसाद के पाने से पानेवाले को प्रसन्नता मिलेगी, शान्ति मिलेगी, सच्ची आरोग्यता प्राप्त होगी और हमारा सात्त्विक बना शरीर एवं मन स्वतः ही भगवन्मार्ग का पथिक बन जायेगा।

□□□

संसार का नदी रूप का वर्णन

पंचस्रोतोऽम्बुं पंचयोन्युग्रवक्रां पंचप्राणोर्मिं पंचबुद्ध्यादिमूलाम्।
पंचावर्तां पंचदुःखौघवेगां पंचाशद्भेदां पंचपर्वामधीमः।।

[श्वेताश्वतरोपनिषद् ५]

अर्थात् – पाँच स्रोतों से आने वाले विषयरूप जल से युक्त, पाँच स्थानों से उत्पन्न होकर भयानक और टेढ़ी-मेढ़ी चाल से चलने वाली, पाँच प्राणरूप तरंगों वाली, पाँच प्रकार के ज्ञान के आदि कारण मन ही है, मूल जिसका, पाँच भँवरों वाली, पाँच दुःखरूप प्रवाह के वेग से युक्त, पाँच पर्वों वाली और पचास भेदों वाली नदी को हम लोग जानते हैं।

व्याख्या – इस मंत्र में संसार का नदी के रूप में वर्णन किया गया है। वे ब्रह्मवादी कहते हैं – हम एक ऐसी नदी को देख रहे हैं, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही पाँच स्रोत हैं। संसार का ज्ञान हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही होता है, इन्हीं में से होकर संसार का प्रवाह बहता है। इसलिए इन्द्रियों को यहाँ स्रोत कहा गया है। ये इन्द्रियाँ पंच सूक्ष्म भूतों (तन्मात्राओं) से उत्पन्न हुई हैं। इसलिए इस नदी के पाँच उद्गम स्थान माने गये हैं। इस नदी का प्रवाह बड़ा ही भयंकर है। इसमें गिर जाने से बार-बार जन्म-मृत्यु का क्लेश उठाना पड़ता है। संसार की चाल बड़ी टेढ़ी है, कपट से भरी है। इससे निकलना कठिन है। इसलिए इस संसार रूप नदी को वक्र कहा गया है। जगत के जीवों में जो कुछ भी चेष्टा या हलचल होती है, वह प्राणों के द्वारा होती है। इसलिए प्राणों को इस नदी की तरंगमाला कहा गया है। नदी में हलचल तरंगों से होती है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा होने वाले चाक्षुष आदि पाँच प्रकार के ज्ञानों का आदि कारण मन है, जितने भी ज्ञान हैं सब मन की ही तो वृत्तियाँ हैं। मन न हो तो इन्द्रियों के अभीष्ट रहने पर भी किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता। ऐसा मन ही संसार रूपी नदी का मूल है। मन से ही संसार की सृष्टि होती है। सारा जगत मन की ही कल्पना है। मन के अमन हो जाने पर, नाश हो जाने पर जगत का अस्तित्व ही नहीं रहता। जब तक मन है, तभी तक संसार है। इन्द्रियों के शब्दस्पर्श आदि पाँच विषय ही इस संसार रूप नदी में आवर्त अर्थात् भँवर हैं। इन्हीं में फँसकर जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ जाता है। गर्भ का दुःख, जन्म का दुःख, बुढ़ापे का दुःख, रोग का दुःख और मृत्यु का दुःख – ये पाँच प्रकार के दुःख ही इस नदी के प्रवाह के वेगरूप हैं। इन्हीं के थपेड़ों से जीव व्याकुल रहता है और इस योनि से उस योनि में भटकता रहता है। अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (प्रियबुद्धि), द्वेष (अप्रिय बुद्धि) और अभिनिवेश (मृत्युभय) – ये पंचविध क्लेश ही इस संसार रूप नदी के पाँच पर्व अर्थात् विभाग हैं। इन्हीं पाँचों विभागों में सारा जगत बँटा हुआ है। इन पाँचों का समुदाय ही संसार का स्वरूप है और अन्तःकरण की पचास वृत्तियाँ ही इस नदी के पचास भेद अर्थात् भिन्न-भिन्न रूप हैं। अन्तःकरण की वृत्तियों को लेकर ही संसार में भेद की प्रतीति होती है।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आरक्षण (स्थान आरक्षण) का विज्ञापन
2. [illegible] (एडीसपॉन्सरशिप)
3. [illegible] (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति [illegible] प्रति [illegible] रु. 300.00 प्रति [illegible]
4. [illegible] रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. [illegible] दर रु. 1000/- प्रति [illegible] प्रति माह
6. [illegible] दर रु. 1000/- प्रति [illegible] रु. 400/-
7. [illegible] दर रु. 2/- प्रति [illegible] 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाताराम शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर एन आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाताराम शर्मा